

-730-28-4-81-10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

|| No H 820.4

Accession No. G H 309

thor V G S H

|le

This book should be returned on  date last marked below

प्रकाशक

इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशन्स), प्राइवेट लिमिटेड,
ब्रांच हैदराबाद (दक्षिण)

१९५६

मूल्य २।)

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186677

UNIVERSAL
LIBRARY

विद्यासागर, एम० ए०, साहित्यालंकार
प्राध्यापक हिन्दी, उस्मानिया विश्वविद्यालय
हैदराबाद (दक्षिण)

प्रकाशक
इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशन्स), प्राइवेट लिमिटेड,
ब्रांच हैदराबाद (दक्षिण)
१९५६

मूल्य २।)

प्रकाशक :
बी० एन० माथुर
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड,
इलाहाबाद

मुद्रक :
नरेन्द्रनाथ घोष,
रिपब्लिकन प्रेस, प्रयाग

दो शब्द

हिन्दी साहित्य के भण्डार को भरने का इधर कुछ वर्षों से विशेष प्रयत्न दृष्टिगोचर हो रहा है। साहित्य की वृद्धि और पुराने कवियों तथा लेखकों की खोज के साथ ही साथ साहित्य के इतिहास के लेखन का कार्य भी अग्रसर हो रहा है। अनेक छोटे-बड़े इतिहास अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। पिछले कुछ वर्षों के अपने अध्यापन के अनुभव से मुझे साहित्य के एक संक्षिप्त, सरल एवं सुबोध इतिहास की आवश्यकता प्रतीत हुई, जिसमें अध्ययन की वे सामग्री का सिंहावलोकन हो चुका हो।

प्रस्तुत पुस्तक इसी दृष्टिकोण से लिखी गई है। इसकी सामग्री के लिए मैं अपने पूर्ववर्ती सभी इतिहासकारों से प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। श्रद्धेय गुरुवर आचार्य वंशीधर जी विद्यालंकार—भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग उस्मानिया विश्वविद्यालय से मुझे इतिहास की सामग्री को क्रमबद्ध करने का एक नया दृष्टिकोण प्राप्त हुआ है। आदरणीय श्री राजनिरंजन जी पाण्डेय, वर्तमान अध्यक्ष हिन्दी विभाग से इस कार्य को पूर्ण करने की प्रेरणा मिली। मेरे मित्र तथा सहयोगी श्री कृष्णदत्त जी M.A.B.Ed., श्री रामकुमार जी खंडेलवाल M.A., श्री बैजनाथजी चतुर्वेदी M. A. आदि ने प्रेस में भेजने से पूर्व पाण्डुलिपि को आद्योपान्त पढ़ने और सलाह सुझाव देने का कष्ट उठाया। एतदर्थ मैं इन सभी महानुभावों के निकट आभारी हूँ, बहिन सावित्री एम० ए०, प्राध्यापिका हिन्दी, वेंकटरामा रेड्डी महिला महाविद्यालय तथा बहिन सुदर्शन जी B. A. से मुझे इस कार्य में बहुत सहायता मिली, जिसे मैं कदापि भूल नहीं सकता।

इस पुस्तक की सहायता से हिन्दी के इतिहास का अध्ययन करने में यदि विद्यार्थियों को कुछ सहायता मिली तो मैं अपना प्रयत्न सफल समझूँगा।

भास्करभवन रमकोट
हैदराबाद
वसन्तपंचमी-२०१२ वि०

विद्यासागर

विषय-सूची

१—प्राचीन भाषाएँ और हिन्दी	१
२—हिन्दी की प्रादेशिक भाषाएँ	६
३—काल-विभाग	६
४—अपभ्रंश-साहित्य	११
५—वीरगाथा-काल	२६
६—भक्ति-काल	४६
७—निर्गुणभक्ति-ज्ञानमार्गी शाखा	५२
८—प्रेममार्गी शाखा	६२
९—सगुण-भक्ति—रामभक्तिशाखा	६६
१०—कृष्णभक्ति शाखा	७५
११—भक्तिकाल के अन्य कवि	८५
१२—रीति-काल	८५
१३—रीतिकाल के रीति ग्रन्थकार कवि	८६
१४—आधुनिक काल	१२८
१५—आधुनिक काल का पद्य	१४३
१६—आधुनिक काल के गद्य और पद्य-लेखक	१४८
१७—नाटकों का विकास	१८४
१८—उपन्यास साहित्य	१६०
१९—कहानी का विकास	१६३
२०—निबन्ध साहित्य	१६६
२१—समालोचना	१६८
२२—छायावाद	२००
२३—रहस्यवाद	२०३
२४—प्रगतिवाद	२०५
२५—प्रयोगवाद	२०७

१—प्राचीन भाषाएँ और हिन्दी

हिन्दी साहित्य की जानकारी के पूर्व हिन्दी की उत्पत्ति और उसके पूर्व की भाषाओं की जानकारी आवश्यक है। हिन्दी के पूर्व निम्न भाषाएँ थीं :—

१—वैदिक संस्कृत—इस भाषा का सबसे प्राचीन रूप ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वेद संसार का सबसे प्राचीन ग्रन्थ माना जाता है। इस प्रकार वैदिक संस्कृत भारत की ही नहीं संसार की सबसे प्राचीन भाषा थी।

२—संस्कृत या लौकिक संस्कृत—वैदिक संस्कृत के बाद यहाँ पर संस्कृत या लौकिक संस्कृत प्रचलित हुई। इस भाषा का साहित्य बहुत ही विस्तृत और समुन्नत है और यह भाषा हमारे देश की सांस्कृतिक एकता की प्रतीक है। इस भाषा का व्याकरण महर्षि पाणिनि ने ईसा के ६०० वर्ष पूर्व लिखा था।

३—प्राकृत—संस्कृत के बाद प्राकृत भाषाएँ हमारे देश में प्रचलित हुई। इन प्राकृतों के विभिन्न रूप थे जैसे पाली, महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और अर्ध मागधी आदि। इनमें साहित्य में सबसे पहिले पाली प्राकृत का विशेष प्रचार हुआ। भगवान् बुद्ध एवं अन्य बौद्ध प्रचारकों ने इस भाषा के प्रसार में बहुत योग दिया। एक समय था कि पालो समस्त देश में समझी जाती थी।

महाराष्ट्री प्राकृत देश के विशाल भाग में समझी जाती थी इस कारण इसे महाराष्ट्री कहा गया। संस्कृत के नाटकों और गीतों में इस भाषा का विशेष प्रयोग है। और शौरसेनी, शूरसेन के देश की भाषा अर्थात् वर्तमान ब्रजमण्डल की भाषा थी। मागधी का

प्रचार मगध में था और अर्ध मागधी का प्रचार अवध में था । पेशाची नाम की एक और प्राकृत का प्रचार काश्मीर के आस-पास था ।

इन भाषाओं को प्राकृत इसलिए कहा गया है कि इनका विकास जनता ने अपनी प्रकृति के अनुसार किया था ।

४—अपभ्रंश—प्राकृत के बाद अपभ्रंश भाषा का प्रचार हुआ । विशेष कर जैन आचार्यों ने इस भाषा में ग्रंथ रचना करके इसका मान बढ़ाया । इस भाषा में लिखा गया जैन कथा साहित्य बहुत सम्पन्न है । जिस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रदेशों की प्राकृतें भिन्न-भिन्न हैं उसी प्रकार अपभ्रंश भाषाएँ भी भिन्न-भिन्न हैं । आचार्य मार्कण्डेय के अनुसार तीन प्रकार की अपभ्रंश भाषाएँ हैं:—

नागर—ब्रज, गुजरात और राजपूताने में यह प्रचलित थीं ।

ब्राचड़—यह सिंध में प्रचलित थी ।

उपनागर—राजस्थान और पंजाब में उपनागर का प्रचार था ।

५—वर्तमान भारतीय भाषाएँ और हिन्दी—भारत की वर्तमान भाषाओं का प्रचार इन्हीं अपभ्रंशों के बाद ही हुआ । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपभ्रंश की अंतिम अवस्था को ही हिन्दी का प्रारंभ माना है । नागर अपभ्रंश से हिन्दी का उद्भव हुआ है ।

इसी प्रकार नागर अपभ्रंश से गुजराती, शौरसेनी से ब्रजभाषा, अर्ध मागधी से अवधी, मागधी से मैथिली या बिहारी, राजस्थानी से डिंगल और महाराष्ट्री से मराठी आदि भाषाओं का विकास हुआ ।

हिन्दी का विकास ब्रज, अवधी, राजस्थानी, मैथिली और खड़ी बोली आदि भाषाओं से हुआ है । वर्तमान हिन्दी आगरा

मथुरा, दिल्ली के आसपास की बोली थी। इसे खड़ी बोली कहा जाता था। विधान द्वारा यही राष्ट्रभाषा बनाई गई है।

भाषाओं का यह क्रमिक विकास कई कारणों से हुआ करता है। किसी भाषा को बोलनेवाला राष्ट्र जितना अधिक सुशिक्षित और सम्यक् होगा उस भाषा को उतना ही अधिक स्थायित्व प्राप्त होगा। 'यद्यपि बहुनाऽधीतं तदपि पठ पुत्र व्याकरणम्' की जागरूकता रखनेवाला राष्ट्र अपनी भाषा को अवश्य बहुत काल तक अपरिवर्तित रूप में रख सकता है। सुसंगठित राष्ट्र की भाषा भी ध्वनि परिवर्तन की दृष्टि से अपरिवर्तित रह जाती है। संगठन के विशृङ्खलित होने पर भाषा भी विशृङ्खलित हो जाती है।

शिक्षा की कमी तथा पौरुष और मनोबल की कमी भी व्यक्ति को सरलता की ओर जाने को बाध्य करती है। व्याकरण की शिक्षा के अभाव में व्यक्ति भाषा के आदर्श स्वरूप के प्रति अंधकार में रहता है और अपनी प्रवृत्ति के अनुसार भाषा को बनाता बिगाड़ता रहता है। जिस राष्ट्र में अशिक्षित लोग अधिक होंगे, उसकी भाषा बड़ी शीघ्रता से परिवर्तित होगी। आर्यपुत्र का अज्जउत्त और आर्य का अय्या होना इस नियम पर भी आधारित है। जिस युग में एक लकड़हारा भी राजा को 'शीतं न बाधते राजन् यथा बाधति बाधते' कहकर राजा के 'बार्धात' प्रयोग को बड़ी कड़ाई से 'बाधते' कहकर सुधार सकता है उस युग में भाषा का स्वरूप जल्दी नहीं बदलता। ध्वनि परिवर्तन की इस प्रक्रिया के भीतर कम मनोबलवाले अशिक्षित व्यक्ति का सरलता की ओर जाने का नैसर्गिक स्वभाव बहुत दूर तक काम करता रहता है।

इसी तरह अर्थ परिवर्तन भी कुछ खास नियमों के आधार होता है। एक भाषा में युग परिवर्तन के साथ एक ही शब्द

एक दूसरे प्रकार का अर्थ देने लगता है। 'बुद्ध' शब्द गौतम बुद्ध के लिए प्रयुक्त होकर एक युग में कितना प्रतिष्ठित और प्रशंसित था पर बौद्धधर्म के प्रति विद्वेष ने उमी से विकसित 'बुद्धू' शब्द को कितने हेय अर्थ का सूचक बना दिया। एक ही शब्द विभिन्न भाषाओं में विभिन्न अर्थ की सूचना देता है। उपन्यास शब्द हिन्दी में जो अर्थ रखता है वह अर्थ वह तेलुगू में नहीं सूचित करता। तेलुगू में उसका अर्थ व्याख्यान हो जाता है। ऐसे शब्द पंडितों के गढ़े हुए पारिभाषिक हुआ करते हैं और अलग-अलग प्रदेशों के पंडित अलग-अलग अभिप्रायों के लिए एक ही शब्द को चुन लेते हैं। राष्ट्र के असंगठित होने के ये सब प्रमाण हैं।

इस तरह के अनन्त कारणों से भाषा विकसित होती हुई चली जाती है। युग बदलने पर एक या दूसरी भाषा को परिस्थितियों के अनुसार अधिक या कम महत्त्व मिलता रहता है। वैदिक धर्म ने संस्कृत को, बौद्ध धर्म ने पाली को तथा जैन धर्म ने प्राकृत को क्रम से देव भाषा और धर्म भाषा का गौरव प्रदान किया। राजा की भाषा भी महत्त्वशालिनी हो जाती है। फारसी और अँगरेजी को भारत में इसीलिए महत्त्व मिला था। राजनीतिक और धार्मिक अन्दोलन भी भाषा के शब्द भाण्डार पर बहुत प्रभाव डालते रहते हैं। शैव, वैष्णव, शाक्त तथा बौद्ध और जैन धर्मों ने भाषाओं को कितने ही नये-नये शब्द दिये। राजा का एकाधिकार शासन, प्रजातन्त्र, साम्यवाद, समाजवाद, गांधीवाद इत्यादि राजनीतिक वादों ने अपने अनुकूल शब्दों की सृष्टि की। आज प्रजातन्त्र के युग में बहुमत के शासन का तन्त्र बहुजन की भाषा 'हिन्दी' को राजभाषा या राष्ट्रभाषा की तरह स्वीकार कर चुका है। इसी तरह की प्रक्रियाओं को पार करती हुई वैदिक संस्कृत से धीरे-धीरे आज की हिन्दी तथा अन्य भाषाएँ विकसित हुई हैं।

विभिन्न विशिष्ट ध्वनियों का प्रयोग करनेवाली ग्रीक, तुर्की, शक, सीथियन तथा अरब और ईरान की जातियों ने भी भारत की भाषाओं को प्रभावित किया, परिणामतः आज की वर्तमान भारतीय भाषाओं के स्वरूप हमें इस तरह के मिल रहे हैं। अतः अनन्त परिस्थितियाँ और कारण, मनुष्य का तथा उसकी भाषा का विकास निरन्तर करते चले जा रहे हैं।

२—हिन्दी की प्रादेशिक भाषाएँ

डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार, उत्तर भारत के मध्यदेश के हिन्दुओं की वर्तमान साहित्यिक भाषा के अर्थ में एवं इस भूमि भाग की बोलियों और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले प्राचीन साहित्यिक रूप के अर्थ में हिन्दी का अभिप्राय होता है। ये भाषाएँ या बोलियाँ निम्न हैं :—

१—राजस्थानी या डिंगल—यह राजस्थान की बोली है। इसे साहित्य में डिंगल भी कहते हैं। राजस्थानी भाषा में अपभ्रंश का मिश्रण होने से इसका साहित्यिक रूप बना है। चूँकि ब्रजभाषा को पिंगल भाषा कहा जाता था उसी के तोड़ पर इस भाषा को डिंगल कहने लगे) हिन्दी के चारण कवियों ने—चंद और नाल्ह इत्यादि ने इसी भाषा में अपनी काव्य-रचना की है। हिन्दी की इस उपभाषा पर नागर-अपभ्रंश का प्रभाव है।

२—ब्रजभाषा या पिंगल—वर्तमान मथुरा, आगरा, भरतपुर के आसपास का प्रदेश ब्रजमण्डल कहलाता है। इस प्रदेश की भाषा ब्रजभाषा कहलाती है। इसका साहित्यिक नाम पिंगल है। इसकी उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। हिन्दी के मध्यकाल में अर्थान् भक्तिकाल और रीतिकाल में यह साहित्य की प्रभावशाली भाषा रही है। सूरदास तथा अष्टछाप के कवियों ने, तुलसी ने भी अपने कुछ ग्रन्थों में, रीतिकाल के लगभग समस्त कवियों ने एवं आधुनिक काल के भारतेन्दु और रत्नाकर आदि

कवियों ने इसी भाषा में कविता की है। खड़ी बोली के पूर्व यह भाषा बहुत व्यापक थी।

३—अवधी—यह बोली पूर्वी हिन्दी का एक रूप है जो कि अवध के प्रदेश में बोली जाती है। हिन्दी के प्रेमगाथाकार कवि और तुलसीदास की अमर रचनाएँ इसी भाषा में हुई हैं। आधुनिक काल में भी द्वारिका प्रसाद मिश्र ने अपना कृष्णायन इसी में लिखा है। इस भाषा की अर्धमागधी अपभ्रंश से उत्पत्ति हुई है।

४—मैथिली या बिहारी—इसकी उत्पत्ति मागधी अपभ्रंश से हुई है। यह वर्तमान बिहार की भाषा है तथा इसका भोजपुरी रूप उत्तर प्रदेश के बनारस आदि स्थानों में प्रचलित है। इस भाषा के सबसे बड़े कवि विद्यापति हुए हैं।

५—बुंदेलखण्डी—यह बुन्देलखण्ड की भाषा है। जगन्निक के आल्हखण्ड में इसका रूप देखा जाता है। केशव, भूषण और बिहारी की रचनाओं में इस भाषा का प्रभाव पाया जाता है। यह भाषा एक प्रकार से ब्रजभाषा की प्रादेशिक भाषा है।

६—छत्तीसगढ़ी—मध्यप्रदेश के उत्तर में छत्तीसगढ़ प्रदेश में छत्तीसगढ़ी हिन्दी की उपभाषा है। इस भाषा में लोक-गीतबहुत लिखे गये हैं।

७—खड़ी बोली—यह पहिले दिल्ली, मेरठ तथा आगरा के आस-पास की प्रादेशिक भाषा थी। मुसलमानों के आगमन के बाद इसका प्रचार बढ़ा और अँगरेजों के शासनकाल में यही

हिन्दी की साहित्यिक हिन्दी बन गई । हिन्दी का गद्य साहित्य इसी में लिखा गया । २६ जनवरी सन् १९५० से यही अब भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा घोषित हो गई है । क्योंकि इसके समझने और बोलने-वालों की संख्या देश में सबसे अधिक है यह अब एक बहुत ही प्रगतिशील भाषा बन गई है और हर प्रकार के साहित्य की वृद्धि इस भाषा में हो रही है ।

३--काल विभाग

हिन्दी साहित्य के इतिहास के अध्ययन से हमें यह ज्ञात होता है कि हिन्दी साहित्य में कति-कति प्रवृत्तियों का मुख्यतया आविर्भाव हुआ है। इन प्रवृत्तियों, उनके क्रम और पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या करना ही साहित्य के इतिहास का मुख्य कार्य है।

साहित्य से देश, काल और परिस्थितियों का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है इसीलिए कहा जाता है कि “साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है।” समाज के अन्दर जो भी विचार उत्पन्न होते हैं उस समय का लेखक और कवि उन विचारों से प्रभावित होकर साहित्य में उन्हें स्थान देता है। दूसरे शब्दों में हम इसी बात को इस प्रकार कह सकते हैं कि किसी देश के साहित्य को पढ़कर हम उस देश की उस समय की सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक प्रवृत्तियों का पता लगा सकते हैं। इस दृष्टि से विचार करने से हिन्दी-साहित्य के इतिहास को चार कालों के बाँटा जाता है :—

- १—प्रारम्भिक काल या वीरगाथा काल संवत् १०५० से १३७५
- २—मध्यकाल या भक्तिकाल ,, १३७५ से १७००
- ३—उत्तर मध्यकाल या रीति काल ,, १७०० से १८००
- ४—आधुनिक काल ,, १८०० के बाद

साहित्य के इतिहास का उपरोक्त काल विभाजन उन कालों की विशेष प्रवृत्ति के आधार पर किया है। यद्यपि उन कालों में साधारण प्रवृत्ति के अतिरिक्त अन्य प्रकार की भी रचनाएँ हुई हैं

तथापि सामयिक मुख्य प्रवृत्ति को ध्यान में रख कर ही नामकरण हुआ है। हम देखेंगे कि वीरगाथा-काल में हमें भक्ति की तथा रीति-सम्बन्धी रचनाएँ मिलेंगी। इसी प्रकार रीतिकाल में वीररस को एवं भक्ति की रचनाएँ मिलेंगी। इसलिए प्रत्येक काल का अलग-अलग विवेचन करते समय पहिले उस काल की मुख्य प्रवृत्ति की रचनाओं और कवियों का वर्णन किया गया है तथा उनके बाद अन्य प्रवृत्ति की रचनाओं और कवियों का वर्णन किया गया है।

दूसरी बात यह है कि काल का समय निर्धारण करते समय यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि एक काल के समाप्त होते ही दूसरे दिन से अन्य प्रवृत्ति की रचनाएँ आरंभ हो गईं। हमें उस समय के आगे पीछे भी पूर्व और परोक्ष काल की रचनाएँ मिलेंगी।

४—अपभ्रंश-साहित्य

अपभ्रंश से वर्तमान हिन्दी की उत्पत्ति हुई और अपभ्रंश साहित्य की बहुत सी परम्पराएँ हिन्दी साहित्य में आई हैं इसलिए अपभ्रंश और उसके साहित्य के विषय में कुछ जानना आवश्यक प्रतीत होता है।

अपभ्रंश का उद्भव किस प्रकार और किस समय हुआ इसके विषय में बहुत से मत हैं। हमें अपभ्रंश का जो ऐसा साहित्य प्राप्त होता है जिसकी प्रवृत्तियों का हिन्दी से प्रत्यक्ष सम्बन्ध प्रतीत होता है वह विक्रम की ७ वीं शती से प्रारम्भ होता है।

“अपभ्रंश भाषा के नाम के विषय में भिन्न-भिन्न विद्वानों के मत” :—

(१) पतञ्जलि के समय में ही संस्कृत भाषा में परिवर्तन पाये जाते थे। उसने अपने महाभाष्य में संस्कृत के जो शब्द अशुद्ध रूप से उच्चारित होते थे उन्हें “अपशब्द” कहा है और शुद्ध रूप से उच्चारित शब्दों को “शब्द” की संज्ञा दी है। ये ही परिवर्तित “अपशब्द” ही बाद में चलकर ‘अपभ्रंश’ बने।

(२) विक्रम की तीसरी शताब्दी तक भी इस भाषा का ‘अप-भ्रंश’ के नाम से उल्लेख नहीं मिलता। भरत मुनि ने इसे ‘देश-भाषा’ के नाम से लिखा है। वररुचि के ‘प्राकृत प्रकाश’ में भी अपभ्रंश नाम नहीं मिलता।

(३) विक्रम की सातवीं शताब्दी से इस भाषा का नाम अपभ्रंश रूप में मिलता है। उस समय बलभी के राजा धारसेन

द्वितीय के शिलालेख पर यह लिखा हुआ है कि उसका पिता गुहसेन संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तीन भाषाओं का पंडित था । (वि० सं० ६५० के पूर्व) ।

(४) सप्तम शताब्दी में दण्डी ने भी इस भाषा को 'अपभ्रंश' संज्ञा दी है । उसने 'काव्यादर्श' में इसे अभीर जाति (अहीर जाति) की भाषा कहा है ।

बाद में दण्डी लिखते हैं कि संस्कृत से भिन्न सभी भाषाएँ अपभ्रंश हैं । प्रमाण :—

आभीरगदि गिरः काव्येषु अपभ्रंश इति स्मृतः ।

शास्त्रेषु संस्कृतादन्यदपभ्रंश इवोदितम् ॥

यहाँ पर शास्त्र से तात्पर्य "महाभाष्य" आदि व्याकरण से है । अतः उनके मत से समस्त प्राकृतें भी अपभ्रंश हैं ।

(५) 'काव्यालङ्कार' की टीका में 'नमि' साधु ने भी प्राकृत को ही 'अपभ्रंश' लिखा है । "प्राकृतमेव अपभ्रंशः" .

(६) डाक्टर हार्नली कहते हैं कि आर्यों की भाषा को जब अनार्य विकृतरूप से बोलने लगे तो अनार्यों द्वारा बहुत से रूपान्तर स्थान भेद के अनुसार उस भाषा के हुए । वे ही रूपान्तर भिन्न-भिन्न प्रदेशों की 'अपभ्रंश' भाषा हुई । इस प्रकार प्रदेशों के अनुसार 'अपभ्रंश' के कई रूप हैं जिसमें महाराष्ट्री सबसे पुरानी है । इसके अन्य रूप शौरसेनी, मागधी, अर्धमागधी आदि मिलते हैं ।

(७) ग्रियर्सन की सम्मति में भिन्न-भिन्न प्राकृत भाषाएँ जब व्याकरण के नियमों में बँध गईं तो जन साधारण में उनका वह रूप अप्रचलित हुआ क्योंकि वह विद्वानों की भाषा बन गई थी और उसके बाद की नई बोली जानेवाली भाषाएँ ही 'अप-

भ्रंश' कहलाई। ये भाषाएँ ईसा की ५वीं शताब्दी के बहुत पूर्व से ही प्रचलित थीं और १०वीं सदी तक चलती रहीं।

(८) 'राहुल' इन भाषाओं का काल ७६० A. D. से १३०० A. D तक मानते हैं। अपनी प्राकृत चन्द्रिका में उन्होंने इसके २७ भेद बनाये हैं।

साहित्य में अपभ्रंश का सब के पहिला प्रयोग कालिदास की 'विक्रमोर्वशीय' में मिलता है। उस पुस्तक के चतुर्थ सर्ग में श्लोकों की भाषा अपभ्रंश है। इसके बाद "हरिवंश पुराण और पौम चरियु", महापुराण तथा उपदेश तरङ्गिणी में भी इस भाषा का प्रयोग मिलता है।

शुक्ल जी के अनुसार प्राकृत की कई अवस्थाएँ थीं। उनमें प्राकृत की अन्तिम अवस्था को वे अपभ्रंश कहते हैं और इसी अवस्था से हिन्दी साहित्य का आविर्भाव हुआ। वे अपभ्रंश को प्राकृताभास हिन्दी मानते हैं। वे आगे कहते हैं कि जिस समय अपभ्रंश काव्य की भाषा थी उस समय जनता की भाषा दूसरी ही थी जिसे देश भाषा के नाम से विद्यापति आदि कवियों ने प्रकारा है। प्राकृत में 'गाथा' छंद का प्रयोग हाता था ता अपभ्रंश में 'दूहा' अर्थान् दोहा छंद का प्रयोग हुआ करता था। इस देश भाषा का प्रयोग बढ़ता गया और वह भाषा प्राकृत की रुढ़ियों से दूर होती गई और उस प्रकार जो भाषा बाद में चलकर बनी वही भाषा हिन्दी हुई।

उस अपभ्रंश या प्राकृताभास हिन्दी का सबसे पुराना पता विक्रम की सातवीं शताब्दी में सं० ६७५ वि० के बाद बौद्धों और तांत्रिक योग मार्गी साधुओं की रचनाओं में मिलता है। शुक्ल

जी इन रचनाओं को साम्प्रदायिक रचना मानते हैं इसीलिए वे उन्हें साहित्य की कोटि में नहीं रखते ।

शुक्ल जी साहित्यिक अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी का रूप मुख्य और भोज के समय से अर्थात् सम्वत् १०५० से मानते हैं । केवल जनश्रुति के आधार पर (शिवसिंह सरोज के अनुसार) साहित्यिक अपभ्रंश का एक कवि 'पुष्य' नामक सं० ७७० में हुआ था जिसने कि एक अलङ्कार ग्रन्थ लिखा था । चूँकि यह अलङ्कार ग्रन्थ अप्राप्य है हम १०५० वि० से ही 'अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी' का साहित्यिक रूप स्वीकार करते हैं । यही रूप हिन्दी का उद्गम है । यह भाषा वि० १०५० से लेकर १३७५ तक प्रचलित रही ।

प्राचीन हिन्दी के ३२५ वर्ष के समय में प्रथम १५० वर्ष तक तो रचनाएँ केवल धर्म, नीति आदि के दोहों से परिपूर्ण रहती थीं जिन्हें शुक्ल जी ने साम्प्रदायिक रचनाएँ कहा है । बाद में मुसलमानों की चढ़ाइयों का जब प्रारम्भ हुआ तब हिन्दी साहित्य में एक विशेष प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ । इस प्रवृत्ति के परिणाम स्वरूप भाट अथवा चारण काव्य का सूत्रपात हुआ । दूसरे शब्दों में कहें तो "वीर-गाथा-काल" का प्रारम्भ हुआ । ये भाट या चारण राजाओं के पराक्रमपूर्ण चरित्रों एवं कथाओं का वर्णन प्रबन्ध रूप में किया करते थे । यही प्रबन्ध परम्परा आगे चलकर रासो के नाम से हिन्दी साहित्य में विकसित हुई । उस समय कवि विभिन्न भाषाओं में अपनी रचना किया करते थे तथा एक ही कवि दो भाषाओं में अपनी कविता करता था । जहाँ 'शाङ्गधर' अपभ्रंश में कविता करते थे वहाँ खुसरो दिल्ली में देश-भाषा में कविता करते थे और विद्यापति प्राकृतभास अपभ्रंश में अपनी कविता करते थे वहाँ पुरानी हिन्दी अथवा देश भाषा में भी

अपनी कविताएँ करते थे । तात्पर्य यह कि अपभ्रंश का प्रयोग १५वीं शताब्दी तक पाया जाता है परन्तु वि० १०५० के बाद उसमें कमी आ गयी थी और उसका स्थान देश-भाषा ने ले लिया था ।

“अपभ्रंश के कवि वि० ६७५ से १०५० तक”

सरहपा—डाक्टर विनयतोष भट्टाचार्य ने इनका समय वि० सं० ६६० निश्चित किया है । ये नालंदा निवासी थे और बौद्धों की वज्रयान शाखा के विशेषज्ञ थे तथा महाराज धर्मपाल के समकालीन थे । इन्होंने ३२ ग्रंथ लिखे थे । इन्होंने अपभ्रंश मिश्रित देशभाषा में गीत और दोहे भी लिखे हैं जिनमें :—

(१) बाह्य आडंबरों का खंडन (२) सद्गुरु की महिमा गाई गई है और साधु संगति पर जोर दिया गया है (३) जाति पॉति एवं ऊँच-नीच के भेद भाव का भी खंडन किया गया है । (४) दुनिया को न छोड़ते हुए अपने कर्तव्य को कर्म करते हुए ‘सहज्यान’ अर्थात् सीधे रास्ते से प्रभु की प्राप्ति हो सकती है यह उपदेश दिया गया है (५) पंडितों के ढोंग एवं दिखावे आदि को भूठ बनाकर अंतस्साधना पर जोर दिया गया है ।

इसी प्रकार के उपदेश देनेवाले चौरासी सिद्ध हुए थे । ये लोग तथा इसके अनुयायी बिहार से लेकर आसाम तक फैले हुए थे । इनमें वामाचार अपनी चरम सीमा को पहुँच चुका था । जिनमें ‘लुहिपा’ ८३० वि० में, निरुपा ६०० वि० में एवं कणहपा ६०० वि० के बाद हुए । ये चौरासी सिद्ध बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा में हुए और इनका प्रभाव उस समय जनता पर काफी था ।

इन चौरासी सिद्धों में एक नाम गोरखनाथ का ‘गोरक्षा’ के नाम से आता है । गोरखनाथ की शिष्याओं में बौद्धों के वामाचार का

चल्लेख जरा भी नहीं है और उनके नाम से अलग ही एक 'गोरख-पंथ' चल पड़ा। गोरखनाथ व उनके अनुयायी 'नाथ सम्प्रदाय' के नाम से भी याद किये जाते हैं। नाथों में नौ नाथ प्रसिद्ध हैं। इन लोगों ने बौद्धों के वामाचार का पूर्णतया परित्याग करके प्रभु की प्राप्ति हठयोग द्वारा स्वीकार की। इन्होंने चरित्र पर बहुत बल दिया है। कहते हैं इस नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक आदिनाथ जिनका मूल नाम जालंधरनाथ था बौद्धों के वामाचार से घबराकर पंजाब की ओर चले गये और वहीं से अपनी शिक्षाओं का प्रचार करने लगे। पंजाब का जालंधर शहर इन्हीं का स्मारक है। नाथ सम्प्रदाय के ग्रंथों में इन्हें बालनाथ भी कहा गया है और पंजाब के पहाड़ों में स्थित "बालनाथ का टीला" काफी प्रसिद्ध था। इन आदिनाथ या जालंधरनाथ के शिष्य मत्स्येन्द्रनाथ हुए जो कि गोरखनाथ के गुरु थे। गोरखनाथ के समय के सम्बन्ध में बड़ा मनभेद पाया जाता है। कुछ लोग उन्हें १० वीं शताब्दी में हुए ऐसा मानते हैं और कुछ उन्हें १३वीं शताब्दी का मानते हैं। 'गोरखबानी' की भाषा भी चंदबरदाई के पृथ्वीराज रासो की भाषा से हिन्दी के अधिक समीप है और चंद १३ वीं शती में हुए अतः गोरखनाथ १३वीं शती में हुए हों तो कोई आश्चर्य नहीं। दूसरे महाराष्ट्र के संत ज्ञानेश्वर अथवा ज्ञानदेव अपने को गोरख की शिष्य परंपरा में मानते हैं। ज्ञानदेव अलाउद्दीन के समय अर्थात् सन् १३५८ में थे। इसलिए भी गोरखनाथ १३वीं शताब्दी में हुए हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

'नाथपंथ' में हिन्दू और मुसलमानों को प्रभु का पुत्र माना गया है और उसे किसी भी नाम से पुकारा जा सकता है। उन्होंने राम और रहीम में एकत्व की स्थापना की थी और उनके प्रभु निरुण थे। इस सम्प्रदाय में चरित्र पर विशेष बल दिया गया है।

पूजा के आडम्बरो के प्रति उपेक्षाभाव पाया जाता है तथा वे जाति-पाँति के विरोधी थे और सद्गुरु की महिमा एवं सत्संगति का इन्होंने भी प्रचार किया है। तीर्थाटन एवं वेदाध्ययन का विरोध किया है और हठयोग द्वारा प्रभु प्राप्ति का महात्म्य बताया गया है उन लोगों ने भी पंडितों को फटकारा है।

शुक्तजी ने इन चौगसी सिद्धों एवं नव नाथों की कृतियों को “माम्प्रदायिक रचना” कहा है। हमारे मन में इनकी कृतियों में से बहुत सी बातें साहित्य की कोटि में लायी जा सकती हैं। कारण कि उनके अपने संप्रदाय से सम्बन्धित कुछ बातों को छोड़कर उन लोगों ने भी मानव जीवन को इस प्रकार पर्यवेक्षण कर उपस्थित किया है कि जो साहित्य की कोटि में आ सकती हैं।

हम देखते हैं कि हिन्दी साहित्य के बाद के कवियों की वाणी में हमें उपरोक्त उपदेश प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। जब इन्हीं बातों को हम साहित्य की संज्ञा दे सकते हैं तो पूर्व के कवियों ने इन्हीं बातों को पहिले कह दिया है और वे साहित्य की श्रेणी में क्यों नहीं आ सकतीं इसका कोई कारण समझ में नहीं आता। कबीर आदि निर्गुण भक्त कवियों की रचनाओं में उपरोक्त उपदेश ही भर पड़े है। उपदेशों के साथ-साथ छंद भी दोहा-चौपाई आदि इन्हीं कवियों से उन्हें परंपरा में मिले हैं।

“संध्या भाषा”—बौद्ध धर्म के अंतिम समय में इस “संध्या भाषा” शब्द का प्रयोग बहुत प्रचलित था। बौद्ध सिद्ध लोग अपने विचार इस भाषा की सांकेतिक शब्दावली द्वारा समझाया करते थे। शुक्त जी इसे इन साधुओं की रहस्यमय अर्थों से परिपूर्ण भाषा मानते हैं। उनके अनुसार ये सिद्ध लोग जनता पर अपनी विद्वत्ता का प्रभाव डालने के लिए ऐसी शब्दावली का

प्रयोग करते थे जिनके सामान्य अर्थ से भिन्न अपने सांकेतिक अर्थ हुआ करते थे। इन सहजयानी सिद्धों की वाणी में ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि जिनकी शब्दावली देखकर अर्थ नहीं समझ पड़ता बल्कि विरोधाभास सा प्रतीत होता है परन्तु जब उनके संकेत के अर्थों के द्वारा उन्हें समझा जाता था तो अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

उदाहरण— “काआ तखर पंच बिडाल”

यहां पंच बिडाल का सांकेतिक अर्थ पाँच विकार (१) आलस्य, (२) हिंसा, (३) काम, (४) विचिकित्सा (५) मोह हैं। अर्थात् ये पाँच विकार हैं जो शरीर रूपी वृत्त पर स्थित आत्मारूपी पक्षी को खाना चाहते हैं इनसे बचना चाहिए। (शुक्ल पृष्ठ १८)

आगे शुक्ल जी निम्न श्लोक उद्धृत करते हैं :—

न संध्या संधिरित्याहु संध्या संधिनिगद्यते ।
सुपुष्पा संधिगः प्राणः सा संध्या संधिरुच्यते ॥

उपरोक्त श्लोक नाथ सम्प्रदाय के ग्रंथों में मिलता है जिसका तात्पर्य यह है कि सुपुष्पा नाड़ी के मार्ग से होकर कुंडलिनी जब ऊर्ध्वगति को प्राप्त करती है तब ब्रह्म-ज्योति से उसकी संधि (मेल) होती है। इस संधि को ही वे संध्या कहते हैं और इस संधि का वर्णन जिन सांकेतिक शब्दों के द्वारा भाषा में हो उस भाषा को संध्या भाषा कहते हैं। (शुक्ल पृष्ठ १६)

डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार (पृष्ठ ४८ हिन्दी साहित्य का इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा) संवत् १५७ में मिथिला के आसपास की भाषा को संध्या भाषा कहते हैं। उसका साहित्यिक रूप सं० ८०० के लगभग प्रयुक्त होने लगा था। सरहपा की भाषा संध्या भाषा थी। परन्तु द्विवेदी ने अपनी पुस्तक हिन्दी

साहित्य की भूमिका में लिखा है (पृष्ठ ३४) कि यह अर्थ ठीक नहीं है ।

“संध्याभाषा = अर्धमागधी + प्राकृत + अपभ्रंश + खड़ीबोली” उपरोक्त सूत्र संध्याभाषा के विषय में शंभूप्रसाद बहुगुणा ने ‘भारती’ पत्रिका के अगस्त १९५० के अंक में दिया है ।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री के मत से संध्या भाषा का मतलब उस भाषा से है जिसका कुछ अंश समझ में आए और कुछ अस्पष्ट दिखाई दे परन्तु वह ज्ञान-दीपक से स्पष्ट हो जाय । (द्विवेदी पृष्ठ ३४)

पं० विदुशेखर भट्टाचार्य का भी मत यही है कि यह शब्द मूलतः “सन्धा भाषा” है जिसका मतलब अभिप्राययुक्त भाषा है । आप सन्धा शब्द का संस्कृत “संधाय” का अपभ्रंश मानते हैं जिसका अर्थ अभिप्राययुक्त है ।

इस प्रकार हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संध्याभाषा से तात्पर्य सांकेतिक भाषा से ही है । बात यह है कि ये सिद्ध और नाथपंथी महात्मागण अपना प्रभाव जनता पर डालने के लिए ऐसी भाषा का प्रयोग किया करते थे और जनता उनके चमत्कार-पूर्ण अर्थ को सुनकर उनकी विद्वत्ता और पांडित्य का लोहा मानकर उनकी शिष्या बन जाती थी ।

इस प्रकार की सांकेतिक शब्दावली की परंपरा कबीर की उलटबासियों और सूर के दृष्टकूटों तक में पाई जाती है । कबीर की निम्न उलटबासी बहुत अधिक प्रचलित हैं :—

“कबीरदास की उलटी बानी ।

बरसै कम्बल भीजे पानी ॥”

“अपभ्रंश के साहित्यिक कवि”

(१) पुष्प — ये अपभ्रंश के सर्वप्रथम साहित्यिक कवि हैं ऐसा एक जनश्रुति के आधार पर कहा जाता है। ये राजा भोज के पूर्वज राजा मान के सभासद थे। इन्होंने एक ‘अलंकार ग्रंथ’ लिखा था जो कि उपलब्ध नहीं होता। इस ग्रंथ का उल्लेख मात्र “शिवसिंह सरोज” में मिलता है। इनका रचना-काल संवत् ७७० वि० के लगभग माना जाता है।

(२) स्वयंभूदेव—इनका समय ८४७ वि० है। ये बौद्ध थे। संस्कृत और अपभ्रंश के उच्च कोटि के कवियों में इनका स्थान है। इनके संस्कृत में लिखित “स्वयंभू पुराण” का नाम यद्यपि पुराण है परन्तु है यह एक बौद्ध महात्म्य ग्रंथ (हजारी प्रसाद द्विवेदी—“हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ २११) इनके अपभ्रंश-साहित्य में “पौम चरित” सबसे अधिक प्रसिद्ध है।

इस ग्रंथ में अपभ्रंश भाषा में राम की कथा लिखी है। आठवीं शताब्दी की उनकी इस रामायण में हमें वही भाव मिलते हैं जो कि १६वीं शताब्दी में लिखित तुलसी रामायण में पाये जाते हैं। यह कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी कि तुलसी के भावों का स्रोत यह रामायण भी रही हो। तुलसी के समान इन्होंने भी विनय के पद लिखे हैं। इन्होंने भी दुर्जन, फिर सन्त आदि सब लोगों की विनय करके अपने ग्रन्थ को प्रारम्भ किया है। अधिक क्या छंद भी दोहे, चौपाई हैं। उसमें भी वैसा ही ऋतु-वर्णन, अयोध्या-वर्णन, लङ्का-वर्णन, युद्ध-वर्णन आदि सब तुलसी के ही सदृश हैं। इन्होंने भी आवागमन को दुःख माना है और काया की प्राप्ति नरक माना है। इसमें भी वैराग्य की भावना और संसार की

अनित्यता वैसी ही है। बौद्ध मतावलम्बी होते हुए भी इन्होंने राम का चरित्र लिखा उसका कारण यह है कि बौद्ध-धर्म में बाद में बहुत सी चीजें हिन्दू-धर्म से ले ली गई थीं जैसे कि ईश्वर की कल्पना एवं अनेक बोधिमत्त्वों की भावना आदि।

(३) देवसेन—संवत् ६६० वि० में देवसेन एक जैन ग्रन्थकार हुए हैं जिन्होंने “श्रावकाचार” नामक एक पुस्तक दोहों में बनाई। इन्होंने ही दब्ब-सहाव-पयाम (द्रव्य-स्वभाव-प्रकाश) नामक एक ग्रन्थ दोहों में लिखा।

(४) पुष्पदंत—संवत् १०२६ के आसपास लिखे इनके दो ग्रन्थ “आदि पुराण और उत्तर पुराण” चौपाई छंद में मिलते हैं।

उसी काल के आसपास एक और ग्रन्थ “जमहर चरित्र” (यशधर चरित्र) भी मिलता है जिसके लेखक का नाम अज्ञात है।

(५) हेमचन्द्र—गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह सोलंकी (संवत् ११५०—११६६) और उनके भतीजे कुमारपाल (११६६ से १२३०) के यहाँ इनका बड़ा सम्मान था। अपने समय के सबसे प्रसिद्ध जैनाचार्य थे। इन्होंने महाराज सिद्धराज के समय में एक बड़ा भारी व्याकरण ग्रंथ “सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन” बनाया। इस पुस्तक में संस्कृत प्राकृत तथा अपभ्रंश तीनों भाषाओं का समावेश है। अपभ्रंश के उदाहरणों के लिए दोहों को उद्धृत किया है।

(६) सोमप्रभ सूरि—ये भी एक जैन पंडित थे। संवत् १२४१ में “कुमारपाल प्रतिबोध” नामक गद्य पद्यमय संस्कृत-

प्राकृत-अपभ्रंश काव्य लिखा है। इसमें हेमचन्द्र द्वारा कुमारपाल को समय-समय पर दिये गये उपदेशों की कथाएं हैं।

(७) मेरुतुंग जैनाचार्य—१३६१ संवत् में इन्होंने “प्रबन्ध चिंतामणि” नामक एक ग्रंथ संस्कृत और अपभ्रंश भाषा में लिखा। इस ग्रंथ में बहुत से पुराने राजाओं की कथाएं हैं।

(८) विद्याधर—इस कवि ने कन्नौज के राठौर राजा (शायद जयचन्द्र) के प्रताप का वर्णन एक ग्रंथ में किया है जो कि अप्राप्य है। यद्यपि उसके कुछ पद्य “प्राकृत पिंगल मूत्र” नामक पुस्तक में मिलते हैं। यदि विद्याधर को जयचन्द्र का समकालीन मान लें तो यह कवि वि० की० १३ वीं शताब्दी में हुआ था।

(९) शाङ्गधर—शाङ्गधर का समय विक्रम की १४ वीं शताब्दी का अंतिम चरण माना जाता है। शाङ्गधर के दादा राघवदेव रणथंभौर के प्रसिद्ध वीर महाराज हम्मीरदेव के सभासद थे और हम्मीरदेव की मृत्यु संवत् १३५७ में अलाउद्दीन की चढ़ाई के समय हुई थी। इसी आधार पर शाङ्गधर का काल १४ वीं शताब्दी माना जाता है।

इस कवि ने “शाङ्गधर पद्धति” नामक एक सुभाषित ग्रंथ संगृहीत किया था। उस ग्रंथ में ही शाङ्गधर ने उपरोक्त परिचय अपने विषय में दिया है। इसके अतिरिक्त उसमें “शाबर मंत्र” हैं तथा चित्रकाव्य के कुछ उदाहरण हैं। ये चित्रकाव्य संस्कृत और अपभ्रंश भाषा के मेल से बने हैं। श्री मल्लदेव की प्रशंसा में कथित पद चित्रकाव्य का उदाहरण है :—

नूनं बादल छाड़ खेह पसरी निःश्राण शब्दः खरः ।

शत्रुं पाड़ि लुटालि तोड़ हनिसौं एवं भयान्त्युद्भटाः ॥

कहा जाता है कि इन्होंने “हस्मीर रासो” नामक एक वीरगाथा काव्य की भी रचना ‘देश भाषा’ में की थी। यह काव्य अप्राप्य है परन्तु इसके कुछ उदाहरण ‘प्राकृत-पिंगल-सूत्र’ में मिलते हैं। इन्होंने एक आयुर्वेद का ग्रंथ भी लिखा है जो कि बहुत प्रसिद्ध है।

(१०) ✓ विद्यापति—ये कवि तिरहुत के राजा शिवसिंह के दरबार में संवत् १४६० वि० में वर्तमान थे। ये मिथिला के “बिसपी” नामक गाँव के रहनेवाले थे जो कि आजकल के दरभंगा जिले में है। यह गाँव राजा शिवसिंह ने विद्यापति को भेंट में दिया था जिसका दानपत्र मिलता है। बहुत से लोग यह मानते हैं कि इनका जन्म सं० १४२५ में हुआ था। इनकी मृत्यु १५३२ में हुई।

ये संस्कृत, अपभ्रंश एवं प्राचीन हिन्दी जिसे ‘देशभाषा’ कह कर इन्होंने लिखा है, के प्रकारण्ड पण्डित थे। इन तीनों भाषाओं में इनकी काव्य रचना मिलती है। “गीतगोविन्द” के लेखक जयदेव का इनकी कविता पर बहुत प्रभाव है और उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त करके राधाकृष्ण के गीत इन्होंने लिखे हैं। इसीलिए इन्हें “अभिनव जयदेव” (Modern Joydev) के नाम से पुकारते हैं। यद्यपि ये मिथिला एवं बंगाल की सीमा पर के मिथिला की ओर के ‘बिसपी’ ग्राम के निवासी थे परन्तु इनके साहित्य का प्रभाव और प्रचार बंगाल और बंगाली साहित्य पर बहुत पड़ा। कुछ लोग इसी आधार पर इन्हें बंगाली ही कहते थे। इन्होंने संस्कृत के ११ और अपभ्रंश के दो ग्रन्थ लिखे। हिन्दी की मैथिली उपभाषा में इन्होंने ‘पदावली’ लिखी है जिसके कारण इन्हें “मैथिल कोकिल” की उपाधि से विभूषित किया गया है। ये शैव थे परन्तु इनके गीत वैष्णवों में अधिक प्रचलित थे। अपभ्रंश भाषा में इन्होंने दो

पुस्तकें लिखीं (१) कीर्तिलता (२) कीर्तिपताका। ये पुस्तकें अप्राप्य थीं परन्तु हाल ही में कीर्तिलता का पता नेपाल के राजकीय पुस्तकालय में लगा है (शुक्ल पृष्ठ २६) इसमें बीच-बीच में देश भाषा के पत्र भी हैं।

अपभ्रंश साहित्य का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव

(१) हिन्दी के प्रारंभिक युग में दोहे, चौपाई एवं गीत छंदों में कवियों की रचनाएँ मिलती हैं। कारण यह कि प्रारंभिक काल में हिन्दी कवियों को अपभ्रंश की परंपरा से इन छंदों की प्राप्ति हुई थी। सरहपा, स्वयंभूदेव, देवसेन और पुष्पदंत आदि कवियों के ये ही प्रिय छंद थे।

(२) पश्चिमी अपभ्रंश से राजस्तुति, नीतिविषयक रचनाएँ आदि लिखने की पद्धति हिन्दी को प्राप्त हुई।

(३) निर्गुण भक्त संतों में शास्त्रों की उपेक्षा, फटकारना, अक्खड़पन, शून्य की साधना, योगपद्धति, अवतारवाद और मूर्ति-पूजा का खंडन एवं जाति-पाँति और बाह्याडंबरों का विरोध आदि जो भावनाएँ पाई जाती हैं ये सारी बातें हमें अपभ्रंश साहित्य में विशेषकर सिद्धों, जैनों और नाथों के साहित्य में मिलती हैं।

(४) कबीर आदि सन्तों की वाणी में सद्गुरु का महात्म्य गाया गया है और साध-संगति पर जोर दिया गया है परन्तु उपरोक्त भाव सिद्धों और नाथों की वाणी में भी पाये जाते हैं। सन्तों के सदृश सिद्धों ने उनके पूर्व ही पूजा के बाह्य विधानों, तीर्थटन एवं वेदाध्ययन का विरोध कर सामान्य साधना को आगे रखा है।

(५) साखी, बानी, रमैनी आदि शब्दों का प्रयोग मिद्धों और नाथों के साहित्य में भी मिलता है और नाथ सम्प्रदाय से राजस्थानी मिश्रित भाषा कवीर आदि की मिली है।

(६) कवीर की उलटवामी और गर के दृष्टकूट सांकेतिक रूप में अपने विशेष अर्थ को रखते हैं। इस प्रकार सांकेतिक रूप में कहने की पद्धति अपभ्रंश की “मंघ्या भाषा” में थी।

(७) संस्कृत और प्राकृत में तीन वचन हैं और तीन ही लिंग हैं। परन्तु प्राकृत के बाद अपभ्रंश से ही दो वचन और दो लिंग रह गये हैं और उसी रूप में हिन्दी को प्राप्त हुए। द्विवचन और नपुंसकलिङ्ग का प्रयोग न अपभ्रंश में था और न हिन्दी में है।

(८) अपभ्रंश में ही कवियों में अपनी रचना के साथ अपना नाम या उपनाम लिखने की प्रथा चल पड़ी है जो कि संस्कृत में नहीं थी।

(९) तुलसी रामायण में तुलसी के भावों पर अपभ्रंश के कवि स्वयंभूदेव की रामायण (पौम चरित) का प्रभाव स्पष्ट है। तुलसी ने पहले दुर्जन को प्रणाम किया है फिर सन्तों आदि को, वैसा ही स्वयंभू की रामायण में मिलता है। तुलसी के विनय के पद भी स्वयंभू के सदृश ही हैं।

५—वीर गाथा काल

(विक्रमी संवत् १०५० से १६७५ तक)

सम्राट् हर्षवर्धन की मृत्यु (वि० सं० ७०४) के उपरान्त भारत वष कई छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया था। उन राज्यों के राजाओं में एकता का अभाव होने से वे आपस में लड़ा करते थे। इसके अतिरिक्त भारत के पश्चिमोत्तर सीमांत से मुसलमानों के आक्रमण भी प्रारम्भ हो चुके थे। महमूद गजनवी तथा शाहबुद्दीन गोरी के हमलों का यही समय था।

पहले तो ये आक्रमण शासन की इच्छा से नहीं हुए प्रत्युत यहाँ की अपार सम्पत्ति को लूट ले जाने की इच्छा से हुए थे। महमूद गजनवी ने इसी इच्छा से प्रेरित होकर सत्रह बार चढ़ाई की थी। परन्तु कुछ समय बाद आक्रमणकारियों के उद्देश्य में परिवर्तन हुआ। उन्होंने यहाँ पर राज्य स्थापित करने तथा धर्म-प्रचार करने का प्रयत्न किया। एकता न होने से कई छोटे-छोटे भागों में विभाजित यह देश उन आक्रमणकारियों को रोक न सका। उन छोटे-छोटे राज्यों के राजाओं ने आक्रमणकारियों का विरोध तो किया परन्तु अकेले-अकेले। इसीलिए एक-एक करके सब राजा हार गये।

इन राजाओं के दरबारों में कवि लोग रहा करते थे जो कि राजाओं को प्रसन्न करने के लिए उनकी प्रशंसा में कविताएँ रचा करते थे। यह एक साधारण भी बात है कि जब देश लड़ाइयों में

लगा रहता है तब कवि लोग भी ऐसी कविताएँ करते हैं जिससे देश के लोगों, राजाओं तथा योद्धाओं में वीरता का संचार हो। हिन्दी के प्रारम्भिक काल में वीररस की जो रचनाएँ हुई हैं उनका यही कारण है। देश के इस भयङ्कर वातावरण में रणचण्डी का स्वागत करते हुए सरस्वती की अर्चना करनेवाले ये कवि राज-दरबारों के चारण (भाट) थे, जो तलवार और लेखनी दोनों का प्रयोग जानते थे। उन्होंने अपने आश्रयदाता राजाओं के पराक्रम की प्रशंसा वीरगीतों के रूप में लिखी। इन वीर रचनाओं को हिन्दी में “रामों” ग्रन्थों के नाम से याद किया जाता है। ये “रामों गीत” मिल-जुलकर गाने के वीरतापूर्ण गीत हैं।

कभी-कभी इन छोटे-छोटे राजाओं की आपसी लड़ाइयाँ रूप-वती राजकन्याओं तथा जाति अभिमान या शौर्यप्रदर्शनार्थ भी हुआ करती थीं। इसलिए चारणों की इन रचनाओं में कहीं-कहीं वीर रस के साथ-साथ शृङ्गार रस का भी समावेश रहा करता था। इन वीरतापूर्ण रचनाओं के रचयिता चारण थे। इसलिए कुछ लेखक इस काल को ‘चारण-काल’ भी कहते हैं।

इस काल के वीर काव्यों की भाषा का अनुशीलन करने पर हमें पता चलता है कि इन काव्यों की भाषा राजस्थानी भाषा से प्रभावित ब्रजभाषा है। वीर काव्य इसी राजस्थानी भाषा से प्रभावित ब्रजभाषा में ही लिखे गये हैं। इसका प्रमुख कारण यही है कि पश्चिमोत्तर सीमान्त की ओर से होने वाले आक्रमणों का प्रतिरोध करनेवाले प्रायः राजस्थान-निवासी थे।

ऊपर के अनुच्छेद में वीर काव्यों की भाषा को ब्रजभाषा से प्रभावित राजस्थानी भाषा कहा गया है। इन काव्यों की भाषा के विषय में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। कुछ लोग इसे

राजस्थानी अथवा 'डिंगल' ही कहते हैं और कुछ विद्वान जिनमें शुक्ल जी का नाम उल्लेखनीय है इन काव्यों की भाषा को राजस्थानी अथवा 'डिंगल' नहीं मानते । उनका कथन है कि मध्य देश में (ब्रजमण्डल) बोली जानेवाली ब्रजभाषा में प्रभावित होकर राजस्थानी भाषा का जो साहित्यिक रूप चारणों में प्रचलित था उसी भाषा में वे काव्य लिखे गये हैं जिसे 'पिंगल' कहते हैं । अपभ्रंश में प्रभावित शुद्ध राजस्थानी भाषा इसके साथ साथ जनता में प्रचलित थी और उसमें भी साहित्य का निर्माण होता था, उस भाषा को शुक्ल जी डिंगल मानते हैं उस रूप के साहित्य का विवेचन हिन्दी-साहित्य में नहीं आता अतः हिन्दी-साहित्य के अंतर्गत वीर काव्य के जिन प्रथाओं का उल्लेख किया है वे ग्रंथ ब्रज भाषा से प्रभावित राजस्थानी के हैं जिसे पिंगल ही शुक्ल जी मानते हैं ।
(देखिए पृष्ठ ३७, शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास)

परन्तु कुछ विद्वान वीरकाव्यों की भाषा राजस्थानी अथवा डिंगल मानते हैं और उनके मत से डिंगल तथा पिंगल भिन्न भिन्न प्रदेशों की भिन्न-भिन्न भाषाएँ हैं ।

डा० रामकुमार वर्मा (हिन्दी-साहित्य का इतिहास)

पिङ्गल—मध्यदेश की अर्थात् ब्रजमण्डल की भाषा ।

डिङ्गल—राजस्थानी भाषा जो कि नागर अपभ्रंश से निकली है ।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री (हिन्दी-साहित्य का इतिहास)

आचार्य जी ने राजस्थानी साहित्य का नाम “मरभाषा” का साहित्य दिया है । जिसकी तीन शैलियाँ हैं :—

(१) शुद्ध मर (२) पिङ्गल (३) डिङ्गल

उपरोक्त तीन में साहित्य की प्राप्ति 'पिङ्गल और डिङ्गल' में ही होती है। 'पिङ्गल' भाषा ब्रज की भाषा है और इस भाषा के लिखनेवाले कई राजस्थानी कवि हुए हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे कवियों ने जिस भाषा में लिखा है वह डिङ्गल है जो कि अपभ्रंश के समान है। इस भाषा का आदि स्वरूप प्राचीन गुजराती और पश्चिमी हिन्दी का मध्यरूप है। इस प्रकार वीरकाव्य की प्राप्ति सामग्री डिङ्गल भाषा की है। इस मत से स्पष्ट हुआ कि पिङ्गल=ब्रजभाषा

डिङ्गल=अपभ्रंश + गुजराती + राजस्थानी परन्तु ढाँचा ब्रज का।

डिङ्गल शब्द की उत्पत्ति—(मोतीलाल मेनारिया की “डिङ्गल में साहित्य” पुस्तक से उद्धृत।)

(१) **हरप्रसाद शास्त्री** - डिङ्गल शब्द का प्रारम्भ “डगड़” शब्द है और डगड़ = अनगढ़ पत्थर अथवा मिट्टी का ढेला अर्थात् यह भाषा परिष्कृत एवं शिष्ट समाज की भाषा का नहीं था। बाद में जब इस भाषा में साहित्य का सृजन प्रारम्भ हो गया तब ब्रज की साहित्यिक भाषा पिङ्गल के उत्तर में लोग इसे डिङ्गल कहने लगे।

(२) **गजराज ओझा** :— इस भाषा में ‘ड’ का प्रयोग अधिक होने से पिङ्गल के उत्तर में “डिङ्गल” कहने लगे।

(३) **पुरुषोत्तम स्वामी** :— डिङ्गल = डिम् + गल

डिम् = डमरु की आवाज

गल = बात

इस भाषा में “डिम्” की ध्वनि अधिक होने से ‘डिङ्गल’।

(४) रामकरणजी :—डिङ्गल = डिम्ब + गल

डिम्ब = बच्चा । गल = गला । अर्थात् बालकों की भाषा बाद में साहित्यिक रूप मिलने पर 'डिङ्गल' ।

(५) कई लोग डिङ्गल शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'ङी' (to go) धातु से मानते हैं अर्थात् चलती भाषा और उसी शब्द के अनुसार यह डिङ्गल भाषा कहलाई ।

(६) डा० एल० पी० टैसीटरी (Dr. L. P. Tesi-
teri:—डिङ्गल शब्द का अर्थ गँवार अर्थात् गँवारों की भाषा होने से डिङ्गल ।

(७) मोतीलाल मेनारिया :—डिङ्गल = डींग + ल

प्रारम्भ में चाग्ण लोग अपने आश्रयदाता राजाओं की डींग इस-भाषा में ढाँका करते थे । उनकी यही भाषा अत्युक्ति पूर्ण साहित्य से परिपूर्ण होने से 'डिङ्गल' कहलाई । यही भाषा राज-स्थानी है । मेनारियाजी का कथन है पिङ्गल की अपेक्षा डिङ्गल अधिक पुरानी है । इस भाषा का प्रारम्भ तीसरी या चौथी शताब्दी में मिलता है और १५वीं शताब्दी तक इसमें उच्च कोटि के साहित्य का निर्माण हुआ है और अब भी यह भाषा लोकगीतों तथा बोलचाल के रूप में राजस्थान में उपलब्ध होती है । इस भाषा का साहित्य बहुत विशाल है । इसमें जैन साहित्य एवं पुराण मिलते हैं । इस भाषा की गद्य रचना भी सबसे प्राचीन है । १३वीं शताब्दी में इस भाषा में गद्य लिखा जाने लगा और उस गद्य के भी दो रूप पाये जाते हैं (१) बात = कहानी (२) ख्यात = इतिहास इस भाषा में टकार, गकार एवं अनुस्वार का प्रयोग अधिक होता है ।

चारण साहित्य तीन रूपों में मिलता है :—

- (१) दोहों के रूप में
- (२) गीतों के रूप में
- (३) वीर काव्य के रूप में

दोहे और गीतों की संख्या लाखों में है। ये गीत एक विशेष लय (स्वर) के साथ पढ़े जाते हैं। राजस्थान में ऐसा कोई भी प्रसिद्ध पुरुष न होगा जिस पर एक-आध गीत न लिखा गया हो।

डाक्टर रामकुमार वर्मा ने चारणों की विरुदावली के चार भेद किये हैं : —

- (१) इतिहास (२) बात (३) प्रसंग (४) दास्तान

“वीर गाथा काल के मुख्य कवि और ग्रन्थ”

वीर गाथा काल के ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए ध्यान आकृष्ट करनेवाला शब्द ‘रासो’ है। इस काल के ग्रन्थ “रासो” कहलाते हैं।

(१) कुछ लोग इस ‘रासो’ शब्द की उत्पत्ति ‘रहस्य’ शब्द से मानते हैं परन्तु इस रहस्य शब्द से ‘रासो’ का कोई सम्बन्ध नहीं मान्नुम पड़ता। (शुक्लजी इतिहास पृष्ठ ३२)

(२) आचार्य शुक्ल (पृष्ठ ३२) इस शब्द की उत्पत्ति “रसायण” शब्द से मानते हैं। उनकी इस धारणा का आधार “वीसलदेव रासो” है जिसमें “नाल्ह रसायण रस भणई” इत्यादि पाठों में अपनी कृति को ‘रसायण’ के नाम से कवि ने सम्बोधित किया है।

(३) पाश्चात्य विद्वान् 'तासी' इस शब्द की उत्पत्ति 'राजनृत्य' शब्द से मानते हैं जो कि उपयुक्त प्रतीत नहीं होता ।

(४) डा० उदय नारायण तिवारी अपनी पुस्तक "वीरकाव्य" की भूमिका में (पृष्ठ ३३) इस शब्द की उत्पत्ति के विषय में लिखते हैं :—“वस्तुतः इस शब्द की उत्पत्ति “रास” शब्द से हुई है ।” उन्होंने भी अपनी इस धारणा का आधार 'वीसलदेव रासो' तथा देश में प्रचलित 'रासलीला' के 'रास' शब्द को बनाया है । 'वीसलदेव रासो' में रसायण के साथ-साथ कई स्थलों पर 'रास' शब्द का भी उल्लेख मिलता है । कृष्ण भक्तों में 'रास' शब्द रासलीला के अर्थ में प्रयुक्त होता है और यह रासलीला लोगों के सामूहिक रूप से नृत्य एवं गायन द्वारा की जाती थी । इस प्रकार 'रास' शब्द सामूहिक गान और नृत्य के लिए रूढ़ हो गया । बाद में वीर-गाथा-काल में इसी रूढ़ अर्थ के आधार पर वीरकाव्यों के रचयिताओं ने 'रास' से 'रासो' शब्द बना लिया क्योंकि ये वीरकाव्य सेना के सामूहिक गान के रूप में सैनिकों में उत्साह के संचार के लिए गाये जाते थे ।

(५) “साहित्य दर्पण” में विश्वनाथ कविराज ने लिखा है :—
“नाट्य रासक एकाङ्क बहुताललयः स्थितिः” अर्थात् 'रासक' भी नाटक का एक रूप है जिसमें ताल और लय के साथ कई लोग मिलकर गाते हैं । इसी 'रासक' से 'रास' शब्द बना और उससे 'रासो' शब्द की उत्पत्ति हुई हो तो आश्चर्य नहीं ।

अन्त में हमें 'रासो' शब्द की उत्पत्ति 'रास' अथवा 'रासक' से हुई है ऐसा उपयुक्त प्रतीत होता है ।

(१) “सुमान रासो” :—यह ग्रन्थ 'दलपत विजय' नामक

कवि का लिखा हुआ है। इसका प्राप्त प्रति अपूर्ण है। इस ग्रन्थ में बप्पा रावल (कालभोज) से लेकर तीसरे खुमाग तक के वंश एवं युद्धों का वर्णन था। इसमें राणा खुमाग का वर्णन विस्तार से होने के कारण इस ग्रन्थ का नाम 'खुमान रासो पड़ा।

शुक्लजी (पृष्ठ ३३) खुमाग द्वितीय का इसका नायक मानते हैं जो कि ८७० वि० से ९०० वि० तक था। इसी के समय में ही बगदाद के खलीफा अलमायूँ ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की थी।

अब खुमान रासो की जो प्रति उपलब्ध है उसमें महाराणा प्रतापसिंह तक का वर्णन मिलता है। 'शिवसिंह सरोज' के अनुसार एक भाट ने इस ग्रन्थ में श्री रामचन्द्र से लेकर 'खुमाग' तक के युद्धों का वर्णन लिखा था। शुक्ल लिखते हैं (पृष्ठ ३४) कि "यह नहीं कहा जा सकता कि दलपत विजय अमली "खुमान रासो" का रचयिता था या पिछले परिशिष्ट का" कारण यह है कि खुमान के बाद से प्रतापसिंह तक का जो वर्णन प्राप्त होता है उसके १७वीं शती के आमपाम लिखा गया ऐसा निश्चित रूप से कहा जा सकता है। इस प्रकार यह ग्रन्थ वीरगाथा-काल का प्रथम ग्रन्थ है यह कहना उचित नहीं मान्य पड़ता।

"अगरचंदजी नाहटा" ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका (अङ्क ४ सं० १९९६) में एक लेख "खुमान रासो का रचना काल और रचयिता" शीर्षक से प्रकाशित करवाया था जिसमें वे निम्न निष्कर्ष पर पहुँचे हैं :— (पृष्ठ ३४ वीरकाव्य)

(१) इसके रचयिता जैन कवि "दौलत विजय" हैं जिनका जैन धर्म में दीक्षित होने से पूर्व 'दलपत' नाम था।

(२) ग्रन्थ निर्माण काल सं० १७३० से सं० १७६० के मध्य का है।

इस आधार पर भी यह ग्रन्थ वीरगाथा-काल का प्रथम ग्रन्थ नहीं है।

(२) “वीसलदेव रासो” :—नरपति नाल्ह, राजा विग्रह-राज चतुर्थ उपनाम वीसलदेव का समकालीन था। कदाचित् यह उनका राजकवि था। इस कवि ने “वीसलदेव रासो” नामक एक छोटा सा ग्रन्थ चार सर्गों में और लगभग २००० चरणों में लिखा है। कथा का सागंश निम्न प्रकार है :—

सर्ग (१)—मालवा के भोज परमार की पुत्री राजमती से साँभर के राजा वीसलदेव का विवाह होना।

सर्ग (२)—वीसलदेव का राजमती से रूठ कर उड़ीसा को प्रस्थान और वहाँ एक वर्ष निवास।

सर्ग (३)—राजमती का विरह वर्णन दूतों को मनाने भेजना तथा वीसलदेव का लौटना।

सर्ग (४)—इस बीच भोज का अपनी पुत्री को घर ले आना और फिर वीसलदेव का वहाँ जाकर राजमती को लेकर साँभर लौटने का वर्णन है।

इस ग्रन्थ के निर्माण के विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद पाया जाता है। बात यह है कि ग्रन्थकर्ता ने पुस्तक में निर्माण-काल के विषय में निम्न पद्य लिखा है :—

बारह सैं बहोत्तरां मभारि।

जेठ वदी नवमी बुधवारि॥

“बारह सैं बहोत्तरां” शब्द ही विवाद का विषय बन गया है। कुछ विद्वान्—गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अग्रचन्द नाहटा, लाला सीताराम आदि इसका अर्थ १२७२ करते हैं और कुछ

विद्वान्—आचार्य शुक्ल, श्यामसुन्दरदास तथा सत्यजीवन वर्मा आदि इसका अर्थ “बारह सौ बारह उत्तरा” अर्थात् १२०० के ऊपर १२ अर्थात् १२१२ वि० मानते हैं ।

गणना करने पर भी विक्रमी संवत् १२१२ में ही ज्येष्ठ बदी नवमी को बुधवार पड़ता है तथा विग्रहराज चतुर्थ अर्थात् वीसल-देव का समय भी १२२० के आसपास उसके शिला लेखों के आधार पर पाया जाता है । इसलिए इस ग्रन्थ का निर्माणकाल १२७२ वि० न होकर १२१२ वि० ही है क्योंकि ग्रन्थ का कर्ता राजा का सम-कालीन था । समकालीन कहने का आधार यह है कि ग्रन्थ में सर्वत्र वर्तमान काल का ही प्रयोग मिलता है ।

नाल्ह के इस वीसलदेव रासो में किसी युद्ध अथवा चढ़ाई का वर्णन नहीं है जिससे कि उसके शौर्य और पराक्रम का परिचय मिले । इसमें विवाह और रुठ कर चले जाने का वर्णन है । वीर रस के स्थान पर इसमें शृंगार रस का बाहुल्य है और उसमें भी विप्रलम्भ शृंगार का आधिक्य है । विषय को देखते हुए यह ग्रन्थ वीरकाव्य की कोटि में नहीं आता और ‘रासो’ कहना भी उपयुक्त नहीं प्रतीत होता परन्तु जब हम ‘रासो’ का तात्पर्य केवल मिलजुल कर गाने का गीत करते हैं तो कुछ समाधान हो जाता है । ऐसा मानूम पड़ता है कि जब ‘रासो’ लिखने की परंपरा चल पड़ी तब बाद में चल कर वीरता के कथानकों के स्थान पर सम्मिलित गान की पूर्ति के लिए शृङ्गारात्मक कथाओं को भी “रासो” कहा जाने लगा ।

भाषा की दृष्टि से इस ग्रंथ की भाषा राजस्थानी है जिसमें ब्रजभाषा के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है । कहीं-कहीं जैसे महल, नेजा आदि अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग मिलता है ।

इसका समाधान हम इस प्रकार कर सकते हैं कि गाने की चीज होने से बाद में इसमें कुछ शब्दों का हेर-फेर हुआ हो।

३—“पृथ्वीराज रासो” यह ग्रंथ हिन्दी साहित्य का प्रथम महाकाव्य माना जाता है। इसके रचयिता चंद बरदाई हैं। रासो के अनुसार ये महाराज पृथ्वीराज के राजकवि, अंतरंग सखा और सामंत थे। इनका जन्म लाहौर में हुआ था। और जाति के ये भट्ट ब्राह्मण थे। तथा बड़े विद्वान् थे।

यह ग्रंथ ढाई हजार पृष्ठों का है जिसमें ६६ ‘अध्याय’ समय हैं और उस समय के सभी प्रचलित छंदों का इसमें प्रयोग हुआ है। ग्रन्थ की एक पंक्ति के अनुसार इस पुस्तक का अंतिम अंश चंद के पुत्र जल्हण ने पूरा किया।

“पुस्तक जल्हन हत्थ दे चलि गज्जन नृप काज ॥”

इस ग्रन्थ में आवू के यज्ञकुंड के चार क्षत्रिय कुलों की उत्पत्ति और अजमेर में उनमें से एक, चौहान कुल के राजस्थापन करने का वर्णन है। इस ग्रन्थ के अनुसार पृथ्वीराज की माता कमल दिल्ली के राजा अनंगपाल की पुत्री थीं। कमलादेवी की एक बहिन सुन्दरी का विवाह कन्नौज के राजा विजयपाल से हुआ था जिससे जयचंद की उत्पत्ति हुई। पुत्र के न होने से अनंगपाल ने पृथ्वीराज को गोद लिया। जयचंद को यह बात नहीं भायी पृथ्वीराज को अपमानित करने के लिए उसने एक यज्ञ किया और साथ ही अपनी पुत्री संयोगिता का स्वयंवर भी रचा उसमें पृथ्वी - राज की मूर्ति द्वारपाल के स्थान पर रखी गई और उसे निर्मंत्रित नहीं किया गया। संयोगिता ने वरमाला उस मूर्ति के गले में डाल दी। बाद में पृथ्वीराज ने आकर संयोगिता-हरण किया तथा जयचंद की सेना से उसकी उस कारण लड़ाई भी हुई।

कुछ तो लड़ाई के कारण बल का हास हो चुका था और कुछ विलासिता के कारण, समय देखकर शहाबुद्दीन गोरी ने चढ़ाई कर दी परन्तु वह हार गया । बाद में उसने कई चढ़ाइयाँ कीं और अंत में जीत गया । पृथ्वीराज कैद करके गजनी भेजे गये ।

यहाँ तक का वर्णन चंद का लिखा है बाद में चंद गजनी चले गये और बाद की घटना का वर्णन चंद के पुत्र जल्हण ने किया है । जिसके अनुसार चंद के इशारे पर पृथ्वीराज ने शब्दवेधी बाण द्वारा शहाबुद्दीन को मार दिया और फिर चंद तथा पृथ्वीराज एक दूसरे को मार कर मर गये । इसके अतिरिक्त बीच बीच में बहुत से राजाओं के साथ पृथ्वीराज के युद्ध और अनेक राजकन्याओं के साथ विवाह की कथाएँ इस ग्रन्थ में भरी पड़ी हैं ।

पृथ्वीराज की सभा के एक काश्मीरी कवि जयानक का लिखित “पृथ्वीराज विजय” नामक एक संस्कृत काव्य भी मिलता है । उस ग्रन्थ के साथ इस ग्रंथ की घटनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि ‘पृथ्वीराज रामो’ की बहुत सी घटनाएँ मनगढ़न्त हैं । ‘पृथ्वीराज विजय’ के अनुसार उनकी माता का नाम कमला न होकर कर्पूरदेवी है और पृथ्वीराज के गोद लिये जाने तथा संयोगिता हरण आदि प्रसंग असंगत प्रतीत होते हैं । ‘पृथ्वीराज विजय’ को प्रामाणिक मानने का कारण यह है कि उसमें दी गई घटनाएँ ऐतिहासिक तथ्यों से मेल खाती हैं । हांसी के शिला लेख के अनुसार भी “पृथ्वीराज-विजय” की घटनाओं की पुष्टि होती है ।

रामो में दिये गये संवत् भी अप्रामाणिक हैं । उसके संवत्‌ों के अनुसार वि० १११५ से ११५८ वि० तक पृथ्वीराज के जन्म से लेकर शहाबुद्दीन के साथ उसके युद्धों तक का वर्णन है । जबकि

शिलालेखों एवं दानपत्रों के अनुसार घटना कम १२५८ वि० तक हमें ले जाता है। फारसी की ऐतिहासिक पुस्तकों के भी अवलोकन से पता चलता है कि गोरी की पहली लड़ाई वि० सं० १२४८ में हुई। इस प्रकार रासो के संवत् ऐतिहासिक तथ्यों की कसौटी पर ठीक नहीं उतरते। एक विद्वान् श्री मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने 'रासो' के संवत्तों की पुष्टि करते हुए लिखा है कि उसके संवत्तों में ६१ वर्ष का भेद इसलिए है कि नंदवन्शी राजा शूद्र थे इसलिए उनके राज्य काल का समय इन संवत्तों से राजपूत भाटों ने निकाल दिया है। उन्होंने इसका आधार रासों का एक दोहा लिया है। परन्तु यह तर्क युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता क्योंकि जिस दोहे का आधार लेकर वे ऐसा कहते हैं उस दोहे के ही कई पाठ-भेद मिलते हैं तथा एक दो संवत् इससे चाहे ठीक भी बैठें परन्तु सब संवत् इससे भी ठीक नहीं प्रतीत होते।

'पृथ्वीराज-विजय' के अनुसार जयानक ने पृथ्वीराज के मुख्य भाट का नाम "पृथ्वीभट्ट" लिखा है। चंद का कहीं भी उल्लेख नहीं है परन्तु उसी ग्रंथ के पांचवें सर्ग के एक श्लोक में 'चन्द्र' शब्द को देखकर पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा 'चन्द' के अस्तित्व को मानते हैं। इस कवि के अस्तित्व की पुष्टि एक अन्य काश्मीरी पं० ज्योतिराम ने भी अपने ग्रंथों में की है परन्तु शुक्ल जी के अनुसार (पृष्ठ ४४) यदि 'चन्द' था भी तो पृथ्वीराज का सभासद नहीं था प्रत्युत उसके पुत्र गोविन्दराज अथवा अन्य किसी वंशज के यहाँ रहा होगा जिसने बाद में पृथ्वीराज की प्रशंसा में यह 'रासो' लिखा हो। इस आधार पर तथा भाषा की परीक्षा के आधार पर शुक्ल जी उसे १७वीं शताब्दी का बनाया हुआ एक जातीय ग्रंथ कहते हैं। (पृष्ठ ४१) उनका कथन है कि भाषा में आधुनिकता और क्रियाओं के नये रूप होने से यह भाषा बाद की है।

शुक्ल जी इस ग्रन्थ को १७वीं शताब्दी के बाद नहीं रख सकते कारण कि इस ग्रंथ को अकबर ने सुना था ऐसा चन्द के वंशज जानूराम ने, जो कि चंद की २६वीं पीढ़ी के हैं, बताया है। यह खोज श्री हरप्रसाद शास्त्री की है और अकबर १७वीं शताब्दी में हुआ था।

डाक्टर विपिन बिहारी त्रिवेदी को कलकत्ता से “पृथ्वीराज-रासो” पर Ph. D. मिली है। वे इसे प्रामाणिक और पृथ्वीराज की समकालीन रचना मानते हैं यद्यपि कुछ अंश प्रक्षिप्त हैं ऐसा स्वीकार किया है।

इस ग्रंथ को जाली ठहरा कर उसके काव्य पर शुक्ल जी ने जरा भी विवेचन नहीं किया। यदि हम इसे सत्य घटनाओं का ग्रन्थ नहीं है ऐसा मान भी लें तो भी काव्य की दृष्टि से इसका मूल्यांकन किया जाना चाहिए। हमें तो अकबर के काल में इस ग्रन्थ की रचना का क्या प्रयोजन था यही समझ नहीं पड़ता जब कि उस काल में अपभ्रंश भाषा के समझनेवाले थे ही नहीं? सम्भव है कि संवत्‌ों का उल्लेख गलत हो और घटनाओं का भी तो भी विशुद्ध काव्य दृष्टि से यह ग्रन्थ अपनी विशेषता रखता है और १७वीं शताब्दी के पूर्व का है जब कि अपभ्रंश भाषा समझी जाती रही होगी और काव्य की दृष्टि से इसके अध्ययन की आवश्यकता रही होगी।

४ - “भट्ट केदार”—यह कवि गहवारों के विशाल साम्राज्य के अधिपति राजा जयचन्द्र राठौर का राजसभासद था। इन राठौरों की राजधानी कन्नौज थी। उसने अपने आश्रयदाता राजा जयचन्द्र की प्रशंसा में “जयचन्द्र प्रकाश” नाम का एक महाकाव्य लिखा था। “शिवसिंह सरोज” के अनुसार इस बात का

भी पता चलता है कि 'भट्टकेदार' गोरी के दरबार में भी गया था जो कि असम्भव नहीं है क्योंकि जयचन्द्र गोरी का मित्र था ।

५—“मधुकर कवि”—इनके एक ग्रन्थ “जय मयंक जस चन्द्रिका” का उल्लेख मिलता है परन्तु यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है । इस ग्रन्थ में जयचन्द्र की प्रशंसा, प्रताप और पराक्रम का वर्णन था ।

६—“जगनिक”—कालिञ्जर या महोबे के राजा परमादि-देव अथवा परमाल के सभासद जगनिक थे । इन्होंने महोबे के दो प्रसिद्ध वीर आल्हा और ऊदल के वीर चरित्र का वर्णन “आल्हा खंड” नामक वीर काव्य में किया है जिसमें इन दो भाइयों की ५२ लड़ाइयों का वर्णन है । वीरगाथा काल की सब पुस्तकों में सबसे अधिक लोकप्रिय आल्हाखण्ड ही है जो आज भी उत्तर भारत में गायी जाती है । यह ग्रन्थ अब अपने मूल रूप में प्राप्त नहीं होता क्योंकि उसका वर्तमान रूप जो हमको प्राप्त होता है वह प्रारंभ में एक से दूसरे ने कंठस्थ किया था । इसी कारण उसकी शब्दावली में बहुत से परिवर्तन हो गये हैं ।

आल्हा और ऊदल बनाफर वंश के क्षत्रिय थे । यह ग्रन्थ सम्पूर्ण नहीं मिलता कुछ खण्ड ही मिलता है इसलिए इसे “आल्हाखण्ड” कहते हैं । इस खण्ड का संग्रह फर्रुखाबाद के तत्कालीन कलेक्टर मि० चार्ल्स इलियट ने किया था ।

७—“श्रीधर”—इन्होंने सं० १४५४ में “रणमल्ल छन्द” नामक काव्य लिखा है जिसमें ईडर के राजा रणमल्ल की पाटन के सूबेदार जफरखां पर हुई विजय का वर्णन है ।

“वीरगाथा काल के अन्य कवि”

१--“अमीर खुसरो”—इनका जन्म वि० सं० १३१० में जिला एटा के पटियाली नामक स्थान में हुआ था। इनका असली नाम अब्दुल हसन था। ये शेख निजामुद्दीन चिश्ती के शिष्य थे। कहते हैं कि ये गयासुद्दीन बलवन के दरबार में उनके बेटे के मनोरंजन के लिए नौकर रक्खे गये थे किन्तु बाद में ये अपनी प्रतिभा के बल पर राजकवि बन गये। ये गुलामवंश के गयासुद्दीन बलवन से लेकर कुतुबुद्दीन मुबारकशाह तक ११ बादशाहों के राज्यकाल तक बने रहे। ये फारसी के बहुत बड़े विद्वान् थे और संस्कृत तथा हिन्दी पर भी इनका अधिकार था। संगीत से इनको विशेष प्रेम था। ये विनोदी, मिलनमार और सहृदय थे। इनकी मृत्यु संवत् १३८१ में हुई थी।

जिम प्रकार चन्द्र बरदाईआदि कवियों की रचनाओं में हमें उस समय की हिन्दू जनता की विचारधारा का पता लगता है और हिन्दुओं के राजदरबारों की अवस्था का ज्ञान होता है उसी प्रकार अमीर खुसरो की रचनाओं में हमें मुसलमानों के उन मनोभावों की झलक मिलती है जो उनके इस देश में आकर बस जाने के बाद यहाँ के वातावरण के प्रभाव से तथा आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए उत्पन्न हुए थे। उनकी कुछ रचनाएँ फारसी में मिलती हैं और कुछ हिन्दी में तथा कुछ रचनाओं में हिन्दी और फारसी भाषा का मिश्रित प्रयोग मिलता है। ऐसा जान पड़ता है कि इस समय हिन्दू-मुसलमानों में आपस में भाषा का बहुत कुछ आदान प्रदान प्रारम्भ हो चुका था। यहाँ की भाषा में बहुत से अरबी फारसी के शब्द आने लग गये थे। अमीर खुसरो ने

अपना “खालिक बारी” कोष तैयार करके भाषा के इस आदान प्रदान में बड़ी सहायता पहुँचाई। इस पुस्तक में फारसी, अरबी, और हिन्दी के समानार्थवाची (Synonims) शब्द दिये गये हैं।

जनता में प्रचलित दिल्ली और मेरठ के आस-पास की देशी भाषा को यह कवि “हिंदवी” कहा करता था। खड़ी बोली की कविता सबसे पहिले खुसरो ने की है। यद्यपि उस समय काव्य की भाषा ब्रज थी। हिंदवी के बारे में इस कवि ने अपनी “आशिका” नामक पुस्तक में लिखा है “मैं हिंदवी को फारसी से किसी कदर हान नहीं समझता” (डा० रामकुमार वर्मा का इतिहास पृष्ठ १४४) खुसरो ने इस भाषा में पहेलियाँ, मुकरनियाँ, (मुकरियाँ) दो सुखने और ढकोसले लिखे हैं। मुकरनियों का रूप संस्कृत में अपहृति, पहेली-प्रहेलिका अलंकार के रूप में मिलता है। इनकी इस प्रकार की कविता में मनोरंजन की सामग्री बहुत है पर तत्त्व कम है। हो सकता है, वर्तमानयुग में हम अमीर खुसरो की रचनाओं की विशेष महत्त्व न दें परन्तु भाषा के विकास की दृष्टि से खुसरो की उन रचनाओं का उस काल में बड़ा महत्त्व था। मनोरंजन की सामग्री होने के कारण लोग इन कविताओं को रट लिया करते थे परन्तु मनोरंजन के साधन उस बोली का प्रचार बढ़ता जाता था। खुसरो की रचनाओं में अधिक प्रचलन के कारण बहुत से प्रक्षेप भी मिलते हैं इसके अतिरिक्त इस कवि ने ब्रज भाषा में भी काव्य रचना की है तथा फारसी और हिन्दी मिश्रित भाषा का चित्र काव्य भी इनकी रचनाओं में मिलता है।

(१) पहेली—

“कटोरे में कटोरा, बंटा बाप से भी गोरा”

नागियल

(२) मुकरनियाँ या मुकरियाँ—

“वह आवे तो शादी होय
उस बिन दूजा और न कोय
मीठे लागें वाके बोल
है सखि साजन न सखि ढोल ।”

(३) दो सुखने (दो प्रश्न एक उत्तर)

“ब्राह्मण क्यों प्यासा, गधा क्यों उदासा ?

उत्तर—लोटा न था”

(४) ढकोसलो— (बेमतलब की कविता)

“पीपल पकी पपोलियाँ भर भर पेड़ हैं बेर
सिर में लगा खटाक से वाह रे तेरी मिठास”

(५) चित्र काव्य— इन्होंने कुछ गजलें लिखी हैं जिनमें एक पंक्ति फारसी और दूसरी हिन्दी की है। इस प्रकार की एक से अधिक भाषा को मिला कर लिखी गई कविता को चित्र काव्य कहा जाता है परन्तु यदि इसे अनेक भाषा काव्य कहें तो अधिक उपयुक्त होगा। फारसी और उर्दू में इस प्रकार की कविता को “जुल-लिसानैन” या “जुल-जुगतैन” कहते हैं जुल = दो और लिसानैन या लुगतैन = भाषाएँ।

१—उदाहरण :—

जे हाल मिसकी मकुन तगाफुल दुराय नैना, बनाय बतियाँ ।
कि ताबें हिजरा न दारम, ऐ जां ! न लेहु काहे लगाय छतियाँ ॥
शबावे हिज्रां दराज चूँ जुल्फ व रोजे वसलत चूँ उम्र कोतह ।
सखी ! पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अंग्रेरी रतियाँ ॥

२—“विद्यापति” —अपभ्रंश भाषा के विद्वानों में हम विद्यापति के विषय में लिख चुके हैं कारण कि ये अपभ्रंश के भी लेखक थे । इसके साथ इन्होंने मैथिल भाषा में पद्य रचना की है । कवि जयदेव के गीतों से प्रभावित और उनकी विचारधारा को लेकर इन्होंने राधा और कृष्ण की भक्ति में शृङ्गार रस परिपूर्ण गीत लिखे हैं ।

अपभ्रंश में लिखते हुए भी मैथिल की ओर आकर्षित होने का कारण यह था कि अपभ्रंश केवल काव्य की भाषा रह गई थी परन्तु जनता की भाषा उम प्रदेश में मैथिल थी । ये इस भाषा को देशी भाषा के नाम से पुकारते थे । इस भाषा में लिखने का कारण वे अपने एक पद्य में इस प्रकार लिखते हैं :—

“देसिल वञ्चना सब जन मिट्टा”

इनके ये गीत विहार की अपेक्षा बङ्गाल में अधिक लोकप्रिय हुए । इसी आधार पर बङ्गाली इन्हें बङ्गाल का कवि मानते थे । तात्पर्य यह है कि ये और इनके गीत किसी भी साहित्य के गौरव की वस्तु हैं । मैथिल भाषा में लिखित इनके ये गीत ‘विद्यापति की पदावली’ नाम से संग्रहीत हैं । लोगों ने इन्हें “मैथिल कोकिल” एवं “अभिनव जयदेव” की उपाधि से विभूषित किया है ।

इनकी भाषा में कोमलकांत शब्दावली का प्रयोग है । इनका सा माधुर्य बहुत कम हिन्दी के कवियों में है । कहते हैं इनके गीतों को गाते हुए भक्ति के आवेश में चैतन्य महाप्रभु बेहोश हो जाते थे ।

शुक्ल जी इन्हें शृङ्गारिक कवि मानते हैं न कि भक्त । इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उनके पदों में राधाकृष्ण के वर्णन में शृङ्गार रस पाया जाता है परन्तु केवल इसी आधार पर यह कह

देना कि वे भक्त नहीं थे अनुचित आक्षेप मानूँ पड़ता है। राम भक्ति की अत्यधिक श्रद्धा में शुक्ल जी ने प्रायः सभी कृष्ण भक्त कवियों एवं कृष्ण भक्ति में ही शृंगार और विलासिता के दर्शन किये हैं परन्तु हमारा मत है कि उन भक्त कवियों की भक्ति का प्रतीक जब राधाकृष्ण का जीवन है तो उसमें शृंगार का वर्णन आना स्वाभाविक है। ऐसा नहीं कि जानबूझ कर भक्तों ने वंश वर्णन किये हों। हमें कृष्ण भक्त कवियों की भक्ति का सच्चा स्वरूप मीरा में मिलता है। उसका प्रेम वासनाजन्य न होकर हृदय-स्फूर्त है। उसी के सदृश अन्य कृष्ण भक्त कवि एवं विद्यापति की भक्ति में कोई सन्देह नहीं। हम यह मानते हैं कि साधारण विषयासक्त जनता पर इसका प्रभाव बुरा हुआ है और बाद में कृष्ण भक्ति के नाम पर अनाचार फैला है तो इससे वे भक्त कवि भी विषयी थे ऐसा कहना उनके प्रति अन्याय है। गौतम के बाद उसके अनुयायी इतने गिरे कि जिसकी सीमा नहीं परन्तु उनके कर्तव्यच्युत होने से क्या गौतम पर विषयी एवं विलासी होने का आरोप लगाया सकता है ?

६—भक्ति-काल

(वि० सं० १३७५ से लेकर १७०० तक)

मुसलमानों के हमलों का समय समाप्त हो रहा था । दिल्ली को राजधानी बना कर मुसलमानों ने अपना राज्य स्थापित कर लिया था । भारतीय राजा उन आक्रमणकारियों के आक्रमणों को सहन नहीं कर सके और उनके पतन के साथ-साथ हमारे साहित्य में वीरगाथाओं की रचना समाप्त हो गई ।

उस समय हिन्दुओं में केवल प्रभु को याद करने के अतिरिक्त और कुछ करने की शक्ति नहीं थी । कुछ हिन्दू लोग सोमनाथ पर महमूद गजनवी के आक्रमण और उस मन्दिर की तोड़-फोड़ तथा लूट को देख चुके थे । इस प्रकार उनका विश्वास सगुण ब्रह्म में कम हो गया था । उन्होंने मान लिया कि मूर्ति में शक्ति नहीं होती ।

इस देश में जो मुसलमान आये थे वे भी सगुण ब्रह्म में विश्वास नहीं करते थे । इन मुसलमानों में कुछ लोग ऐसे भी हुए हैं जो दोनों धर्मवालों में आपसी प्रेम उत्पन्न करने का जान तोड़ प्रयत्न कर रहे थे ।

नाथ-पंथ ने हिन्दू और मुसलमानों के लिए एक सामान्य भक्ति की पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी । वेदान्त में भी निर्गुण भक्ति का आधार पाया जाता है । इन आधारों को पाकर हिन्दू जाति ने मुसलमानों की भक्ति के साथ साम्य स्थापित करते हुए राम

और रहीम में उस एक ही सृष्टिकर्ता के दर्शन किये। इस प्रकार भक्ति का एक रूप 'निर्गुण भक्ति' के नाम से प्रारम्भ हुआ। सबसे पहले इस प्रवृत्ति का सूत्रपात संवत् १३२८ के लगभग महाराष्ट्र के भक्त नामदेव द्वारा हुआ। जिन पर नाथ-पंथ के ज्ञानदेव के उपदेशों का प्रभाव था। निर्गुण भक्ति का प्रवर्तन यद्यपि महाराष्ट्र के सन्त नामदेव द्वारा १३२८ में प्रारम्भ हो गया था तथापि हिन्दी साहित्य में उसके प्रवर्तक कबीर दास ही थे ऐसा माना जाता है। हिन्दी में नामदेव की रचनाएँ अत्यल्प हैं और कबीर की वाणी व प्रचार क्षेत्र विस्तृत होने से उन्हें ही प्रथम प्रवर्तक हिन्दी साहित्य में माना जाता है। कबीर से प्रभावित होकर निर्गुण भक्ति का जो प्रवाह चला उसका स्वरूप निम्न है :—

कबीर की निर्गुण उपासना = हिन्दू मुसलिम की सामान्य भक्ति भावना + नाथ सम्प्रदाय की हृदय पक्ष शून्य योग साधना और बाह्य आडंबरों व जाति पाँति का विरोध + वज्रयान की मूर्ति पूजा का विरोध + भारतीय वेदान्त का प्रभाव + भक्ति भावना (हृदय पक्ष अर्थान् पेम) जिस पर सूफी मत का प्रभाव है

यह तो हुआ निर्गुण भक्ति का एक रूप जिसे ज्ञानमार्गी-शाखा के नाम से सम्बाधित किया जाता है। निर्गुण भक्ति की दूसरी शाखा प्रेम मार्गी शाखा के नाम से विख्यात है जिस पर मुसलमानों की सूफी विचार-धारा का स्पष्ट प्रभाव है। इस शाखा के कवियों ने कल्पित कहानियों के माध्यम द्वारा प्रेममार्ग का महत्त्व बताया है। सूफी कवि सांसारिक प्रेम की कहानियों के माध्यम द्वारा ईश्वरीय प्रेम की ओर इंगित करते हैं। उनके मत से निर्गुण ब्रह्म का वर्णन नहीं किया जा सकता। अतः वे आत्मा परमात्मा के प्रेम तथा विरह को बतलाने के लिए सांसारिक प्रेम का आश्रय लेते हैं। सूफी कवि जीवन को आत्मा का परमात्मा से

विरह मानते हैं और मृत्यु को आत्मा और परमात्मा का मिलन । आत्मा जीवन भर उस प्रभु से मिलने के लिए तड़पती है और मृत्यु होने पर दोनों का मिलन होता है । इसी लिए प्रेम-मार्गी निर्गुण भक्त कवियों के ग्रन्थ प्रायः दुःखान्त होते हैं ।

इन सूफी कवियों के कथानक तो हिन्दुओं के हैं परन्तु उनमें इन कवियों ने बीच-बीच में सूफी सिद्धान्तों की महत्ता दिखलाई है । इन कथानकों के प्रारम्भ के मुहम्मद साहब की स्तुति है । हिन्दू देवी-देवताओं का तथा मूर्ति पूजा का खंडन भी मिलता है । इन प्रेम गाथाओं पर अपना साहित्यिक महत्त्व है । इन सब प्रेम-गाथा-कार कवियों का प्रचार क्षेत्र अवध है । और अवधी भाषा में तथा उसमें प्रचलित दोहे और चौपाई छन्दों में ही इन लोगों ने अपनी कहानियाँ लिखी हैं ।

भक्ति का दूसरा रूप जो इस देश में प्रचलित हुआ उसे सगुण भक्ति के नाम से स्मरण किया जाता है । यह सगुण-भक्ति भी दो रूपों में प्रचलित हुई । विष्णु के दो अवतारों राम और कृष्ण की भक्ति के रूप में दो प्रकार की सगुण भक्ति प्रारम्भ हो गई थी । जिनका उपदेश भागवद् धर्म में मिलता है ।

बौद्ध और जैन धर्म के उत्कर्ष के समय प्राचीन हिन्दू धर्म का लोप हो रहा था । उसको फिर से स्थापित करने का प्रयत्न कुमारिल भट्ट और मंडन मिश्र ने किया । परन्तु व्यापक रूप से नवीं शती में शंकराचार्य ने अपने अद्वैतवाद के द्वारा वेदान्त धर्म की स्थापना की । और इस प्रकार प्राचीन धर्म लुप्त होता हुआ फिर से प्रकट हो गया । शंकर के बाद विशिष्टा द्वैत-वाद के द्वारा संवत् १८७३ वि० में रामानुज ने विष्णु भक्ति का प्रचार दक्षिण में किया । रामानुजाचार्य के शिष्य कुरेश स्वामी ने विष्णु के अवतार

राम की भक्ति का प्रचार अपनी पुस्तक 'पंचस्तवी' द्वारा किया । विक्रम के १४वीं शती के अन्त में काशी में राघवानन्द ने रामानन्द को रामानुज की शिष्यपरम्परा में दीक्षा दी । और इन्हीं रामानन्द ने १५वीं शताब्दी में राम-भक्ति का प्रचार किया । क्योंकि विष्णु का यह रूप उनके मत से लोक कल्याण कारी था । रामानन्द की राम भक्ति के अधिकारी समस्त वर्ण के लोग हुए । जबकि रामानुज सम्प्रदाय में केवल द्विजों 'ब्राह्मण' क्षत्रिय एवम् वैश्य, को दीक्षा दी जाती थी । रामानन्द की भक्ति के प्रचार का क्षेत्र उत्तर भारत में अयोध्या, काशी, चित्रकूट आदि पूर्वी उत्तर प्रदेश था । उनके उपदेशों का बड़ा व्यापक रूप था । एक ओर उनकी शिष्य-परम्पराओं में कबीर जैसे निर्गुण भक्त हुए, जिन्होंने इनसे केवल भारतीय वेदान्त की शिक्षा और राम का नाम लिया । परन्तु वे सगुण की भक्ति की ओर नहीं गये । रामानन्द की दूसरी शिष्य-परम्परा में सगुण भक्ति का प्रचार हुआ । जिस शिष्य परम्परा में आगे चलकर १७वीं शताब्दी में गोस्वामी तुलसीदास जी हुए । हिन्दी साहित्य में ये ही प्रथम राम भक्त महाकवि हुए । रामानन्द के दो संस्कृत ग्रन्थ मिलते हैं । वैष्णव मताब्ज भास्कर और श्रीरामाचर्न पद्धति ।

रामानुज ने सं० १०७३ में विष्णु भक्ति को प्रारम्भ किया था । उसी अवसर पर गुजरात में सं० १२५८ में माधवाचार्य द्वैत वादी वैष्णव सम्प्रदाय चलाया । इसमें विष्णु के अवतार कृष्ण को मान कर कृष्ण भक्ति का प्रचार "माधव सम्प्रदाय के नाम से किया गया । इस सम्प्रदाय में कृष्ण के साथ राधा की कल्पना की गई थी । उनके बाद निम्बकाचार्य ने कृष्ण भक्ति का प्रचार" निम्बार्क सम्प्रदाय के नाम से किया था । जयदेव इसी निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी थे, जिनका गीत गोविन्द नामक संस्कृत कृष्ण भक्ति

काव्य बहुत प्रसिद्ध है। कविवर विद्यापति के गीतों में हम जयदेव के गीतगोविन्द का प्रभाव स्पष्ट रूप से पाते हैं। निम्बार्क के बाद विष्णु स्वामी ने कृष्ण भक्ति का प्रचार किया। विष्णु स्वामी से प्रभावित होकर बल्लभाचार्य ने १५वीं शताब्दी में समस्त उत्तर में कृष्ण भक्ति का प्रचार “पुष्टि मार्ग” के नाम से किया। जिसका मुख्य केन्द्र वृन्दावन बनाया गया। इस पुष्टि मार्ग का मुख्य सिद्धान्त यह है कि भक्त में प्रेम या भक्ति की प्रवृत्ति तभी उत्पन्न होती है जब प्रभु का अनुग्रह होता है। इस अनुग्रह को वे पोषण कहते हैं। इसी पोषण अर्थात् पुष्टि से पुष्टि मार्ग निकला। प्रभु की भक्ति या विश्वास ईश्वरीय देन है। प्रायः यह देखा जाता है कि आपत्ति आने पर विश्वास हट जाता है। परन्तु जिसका विश्वास आपत्तियों में प्रभु की भक्ति पर और भी अधिक पृष्ठ होता जाता है वही प्रभु का सच्चा प्रेमी है। और यह प्रेम की वृद्धि या पुष्टि प्रभु के अनुग्रह से मिलती है। ऐसा पुष्टिमार्ग का सिद्धान्त है। रसखान के शब्दों में ‘सच्चा प्रेम न घटता है न बढ़ता है। वह चिरस्थायी होता है और एकतरफा होता है।

भक्ति पाँच प्रकार की होती है। (हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ ८०)
 १. शान्त २. दास्य, ३. सख्य, ४. वात्सल्य, ५. माधुर्य भाव (दाम्पत्यभाव)। माधवाचार्य की भक्ति सेव्य सेवक भाव की है और निम्बार्क तथा बल्लभ की भक्ति सख्य (सखा) भाव की है। उनके अनुसार प्रेम में मर्यादा का स्थान नहीं। बल्लभाचार्य ने वृन्दावन में १४७६ सं० में श्रीकृष्ण का एक मन्दिर “श्रीनाथ जी के मन्दिर” के नाम से गोवर्धन पर्वत पर बनवाया। आचार्य जी का जन्म वैशाख कृष्ण एकादशी सं० १५३५ को हुआ था। और उनकी मृत्यु आषाढ़ शुक्ल तृतीया सं० १५८७ को हुई थी।। बल्लभ

के चार ग्रंथ संस्कृत में मिलते हैं । १. पूर्व मीमांसा भाष्य, २. उत्तर मीमांसा भाष्य ३. भागवत की टीका, ४. तत्त्वदीप तथा सोलह छोटे-छोटे प्रकरण ग्रन्थ ।

हिन्दी साहित्य में इन्हीं वल्लभाचार्य के शिष्य सूरदास जी से कृष्ण भक्ति काव्य की धारा प्रारम्भ हुई ।

७—निर्गुण भक्ति ज्ञानमार्गी शाखा

निर्गुण भक्ति का एक रूप ज्ञानमार्गी शाखा कहलाता है क्योंकि इसमें ब्रह्म ज्ञान और प्रभु प्राप्ति का विशेष उपदेश दिया गया है। इसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए सामान्य भक्ति मार्ग का निरूपण किया गया है। इसके प्रचारक संत कहलाते हैं। साधारण तौर पर 'संत' शब्द का अभिप्राय ऐसे महापुरुष से होता है जिसे हम दूसरे शब्दों में साधु, सदाचारी, सज्जन या महात्मा कहते हैं किन्तु हिन्दी के 'संत साहित्य' में संत शब्द का व्यवहार इससे कुछ भिन्न समझा जाता है। यहाँ पर संत शब्द का व्यवहार उन्हीं महान व्यक्तियों के लिए किया जाता है जो उक्त गुणों के अतिरिक्त कतिपय विशेष विचारों और साधनाओं के कारण एक विशेष परंपरा के अनुयायी हों। यह परंपरा बहुत प्राचीन समय से थी परन्तु विशद रूप से कबीर से प्रारंभ होती है। संत निजी अनुभव को ही साधना में विशेष महत्व देते हैं। सादगी, सदाचार, त्याग, निर्भीकता, हृदय की सच्चाई, विश्वप्रेम, सत्संगति का ये निरंतर उपदेश दिया करते हैं। प्रभुभक्ति में निरंतर लगे रहने पर भी ये लौकिक कार्यों में अनासक्ति के साथ लगे रहते हैं। हिन्दी भाषा में संत साहित्य की रचना का सूत्रपात एक प्रकार से उसी समय हो चुका था जब हिन्दी अपने बाल्यकाल में थी। उसका मूल बीज अपभ्रंश साहित्य के समय में ही अंकुरित हो चुका था। इस दृष्टि से हम संत साहित्य को हिन्दी साहित्य का प्राचीनतम व आदिकालीन अंश कह सकते हैं। विक्रम की ७ वीं शताब्दी में ही अपभ्रंश साहित्यकारों के साहित्य में हम संत

साहित्य का मूल स्रोत पाते हैं परन्तु १५वीं शताब्दी से यह विचार-धारा स्पष्ट रूप से सामने आती है। संत साहित्य का विस्तार-क्षेत्र भी कम नहीं है। इसके रचयिताओं में दक्षिण के महाराष्ट्र संत नमदेव हैं तो उत्तर के पंजाबी गुरुनानकदेव भी हैं। राजस्थान में दादू है, काठियावाड़ में प्राण नाथ और बिहार में दरियासाहब आदि हैं। इन सभी संतों की कथनी और करनी में एकता पाई जाती है। इन्होंने अपने उपदेशों को व्यक्तिगत जीवन के अंतर्गत कार्य में परिणित करके दिखाया है। संतों का दार्शनिक दृष्टि कोण भी अत्यन्त व्यापक था। वे अपनी साधना में योगियों के हठयोग, सूफियों के प्रेम योग, वैष्णवों के भक्ति योग सबको समान रूप से स्वीकार करते हैं। उनका लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति है। वे जगत की विभिन्न अनेकताओं में सदा एकता का अनुभव करते थे। उनकी आस्था अद्वैतवाद में थी परन्तु उन्होंने विविध प्रचलित संप्रदायों में समन्वय लाने की चेष्टा की। संतों की विशेषता इस बात में पायी गयी कि उन्होंने अनुभव की कसौटी पर किसी विचार को कसने का प्रयत्न किया। वे किसी बात को शास्त्रानुमोदित होने के कारण नहीं मानते थे। उन्होंने इसीलिए बहुत से प्रचलित धार्मिक आडम्बरों और प्रथाओं का विरोध किया और जीवन में सात्विकता, शुद्धता, एवं सत्यता को लाने का प्रयत्न किया।

संतों के उपदेशों का सार यह था :—

- १—ये निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे और इन्होंने नामस्मरण पर विशेष बल दिया है।
- २—इन्होंने समस्त मानव मात्र को भाई समझा है। जात, पात, छुआ-छूत, ऊँच-नीच की भावनाओं को ये नहीं मानते थे इसीलिए इन्होंने हिन्दू, मुसलमानों को एक माना है।

- ३—इनके अनुसार प्रभु को राम, रहीम, कृष्ण, करीम, गोविन्द, अल्लाह आदि किसी भी नाम से याद किया जा सकता है।
- ४—इन्होंने ईश्वर प्राप्ति के लिए गुरु की महत्ता को स्वीकार किया है और सत्संगति तथा अहंकार त्याग पर विशेष बल दिया है।
- ५—इन्होंने रुढ़िवाद और बाह्य आडम्बरों का—तीर्थाटन, माला फेरना, छपा तिलक लगाना, दाढ़ी बढ़ाना, कपड़े रंगाना आदि सब का विरोध किया है। हिन्दूधर्म और इस्लाम दोनों में जो भी बाह्य आडंबर थे उन सबका इन्होंने निर्भीकता से विरोध किया है।
- ६—इन्होंने वैयक्तिक साधना पर बल दिया है। इनके मन से संसार के लौकिक कार्यों को अनासक्ति के साथ करते हुए कोई भी प्रभु को याद कर सकता है। इसलिए इन के उपदेशों की ओर साधारण जनता बहुत अधिक आकर्षित हुई।
- ७—इन्होंने अपने उपदेश जनता की साधारण भाषा में दिये इस कारण इनकी भाषा में बहुत सी प्रांतीय भाषाओं के शब्दों का मेल है।
- ८—इनकी हर बात अनुभव के आधार पर कही जाती थी इसलिए अटपटी और टूटी-फूटी भाषा में होने पर भी हृदय पर प्रभाव डालती है।

मुख्य कवि

१—कबीरदास—निर्गुण भक्त कवियों में कबीर का स्थान सर्वोच्च है। अब तक के अनुसन्धानों के अनुसार कबीर

दास का जन्म सं० १४५६ वि० माना जाता है। इनके जन्म स्थान एवं माता पिता के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है। इन्होंने अपने एक पद में अपने को काशी का लिखा है। इन्हें नीरू तथा नीमा नामक जुलाहे दम्पति ने काशी के पास लहरतारा नामक तालाब के पास पड़ा हुआ पाया था। सन्तान के न होने के कारण उस जुलाहे दम्पति ने उस बालक को उठा लिया और घर ले जाकर उसका पुत्रवत् पालन पोषण किया। यही बालक आगे चलकर कबीर दास के नाम से विख्यात हुआ।

उन दिनों काशी में स्वामी रामानन्द का प्रचार और प्रभाव बहुत था। उनके उपदेशों को सुन कबीर के दिल में उन्हें अपना गुरु बनाने की लालसा जागृत हुई। परन्तु मुसलमान परिवार में पालन पोषण होने से वे उन तक नहीं पहुँच सके। अन्ततः एक दिन कबीर दास उस घाट की सीढ़ियों पर जाकर लेट गये जहाँ रामानन्द जी नित्य प्रति स्नान के लिये प्रातः मुहूर्त में आया करते थे। संयोग से रामानन्द जी के चरण पर कबीर पड़े और उनके मुख से तुरन्त ही “राम राम” निकल पड़ा। कबीर ने इसे ही अपना गुरु मंत्र मान कर राम नाम का जाप आरम्भ कर दिया। परन्तु रामानन्द के राम से कबीर के राम में बड़ा विभेद था। रामानन्द के अयोध्यावासी दशरथ के पुत्र थे जबकि कबीर के राम समस्त सृष्टि के रचने वाले निर्गुण राम थे। कबीर ने सर्वत्र अपने को रामानन्द का शिष्य प्रसिद्ध किया और अन्त में रामानन्द ने उन्हें अपने शिष्यों में स्थान भी दिया। राम नाम जप के साथ कबीर पर रामानन्द के वेदान्त का बड़ा प्रभाव पड़ा था। इसके अतिरिक्त कबीर माधुओं की सुसंगति में रहा करते थे। वे ज्ञान के पिपासु थे। जहाँ कहीं भी जिस किसी से भी ज्ञान का उपदेश मिल सकता था, वह हिन्दू हो या मुसलमान, कबीर उसके पास पहुँच कर ज्ञान

की प्यास बुझाया करते थे । उन्होंने नाथ पंथ के बहुत से साधुओं एवं मुसलमान फकीरों से भी उपदेश ग्रहण किया । नाथ पंथ से उन्होंने योग की बातें, जाति-पाँति एवं आडम्बर का विरोध सीखा तथा सूफी फकीरों से प्रेम की पीर ली । इन सूफी फकीरों में शेखनबी का नाम उल्लेखनीय है । फिर भी कबीर के उपदेशों में हिन्दू धर्म का प्रभाव अधिक था । उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों सम्प्रदायों के लोगों को एक स्थान पर एकत्रित करने का प्रयत्न किया । राम और रहीम में एकत्व की स्थापना की । उनकी दृष्टि में समस्त मानव भाई हैं और प्रभु को किसी भी नाम से याद किया जा सकता है । कबीर जाति-पाँति के विरोधी थे और दोनों धर्मों में जो भी बाह्य आडम्बर थे उनका कबीर ने बहुत ही कड़े शब्दों में विरोध किया । कबीर सत्य के उपासक थे । इसलिये निडर होकर उन्होंने दोनों जातियों को जागृत करने के लिए कठोर शब्दों में अपनी वाणी कही है । प्रभु प्राप्ति के लिए कबीर ने सत्संगति तथा सद्गुरु का उपदेश दिया है ।

कबीर ने देश के बहुत से भागों की यात्रा की थी । यद्यपि कबीर निरक्षर (unlettered) थे तथापि वे सुशिक्षित (educated) थे । उन्होंने यह ज्ञान साधुओं की सुसंगति से सुन-सुन कर प्राप्त किया था और बहुत सा ज्ञान जीवन के विशाल अनुभव से प्राप्त किया था । कवित्व शक्ति उनके लिए ईश्वरीय देन थी । जीवन के अनुभव के बाद जो कुछ भी भाव उनके हृदय में उठते थे कविता के रूप में ही प्रकट होते थे । अपना जुझावे का कार्य करते हुए वे उमंग में आकर गाया करते और उनके आस-पास सुनने वाले इकट्ठे हो जाते । और धीरे-धीरे बहुत से श्रोता गण कबीर के भक्त और शिष्य बन गये । उन लोगों ने कबीर के चन पद्यों को रट लिया । एक शिष्य के बाद दूसरा शिष्य और इस प्रकार शिष्यों

की परम्परा से कबीर की वाणी को संगृहीत कर लिया गया। और इसी लिए कबीर की वाणी में पाठान्तर भी मिलता है। तथा कबीर के नाम पर बहुत से ऐसे पद भी चल पड़े जो कबीर के नहीं थे।

कबीर की वाणी का संग्रह “बीजक” नाम से प्रसिद्ध है जिसके तीन विभाग हैं—^१ साखी, ^२ सबद, ^३ रमैनी। इनकी साखियों में शिक्षाएँ दी गई हैं और शब्द तथा रमैनी में भक्ति-भाव भरा पड़ा है। भाषा की दृष्टि से इनकी भाषा कुछ रूखी तथा रानस्थानी और पंजाबी का प्रभाव लिए है। शुक्ल जी ने इसे सधुक्ड़ी भाषा कहा है। भाषा में व्याकरण की दृष्टि से यद्यपि अशुद्धियाँ हैं तो भी कबीर की वाणी पर किसी भी साहित्य को गर्व हो सकता है। उनके अपनी बात के वर्णन करने का ढंग इतना सुन्दर और चमत्कार पूर्ण है कि श्रोता पर अपना पूरा प्रभाव डालता है।

इनकी रचनाओं में धर्म के ढकोसलों पर खूब फटकार बताई गई है। छुआछूत, जाति-पाँति, ऊँच-नीच की भावनाओं के कबीर कट्टर विरोधी थे। कबीर ने धार्मिक भेद भावों को दूर करने का ज्ञान तोड़ प्रयत्न किया। उनकी दृष्टि में हिन्दू-मुसलमान समान थे और राम तथा रहीम में भेद नहीं था। इसी कारण उनकी शिष्य मंडली में हिन्दू मुसलमान दोनों पाये जाते थे। उनकी मृत्यु सं० १५७५ में मगहर में हुई। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके शिष्यों ने “कबीर पंथ” चलाया।

२—रैदास—नाभा दास ने अपनी “भक्तमाल” में रामानन्द स्वामी के जिन बारह निगुर्ण-भक्तों का उल्लेख किया है उनमें कबीर के साथ साथ रैदास का भी नाम दिया गया है।

ये जाति के चमार थे । और कबीर के बाद रामानन्द के शिष्य हुए थे । रैदास भी काशी के रहने वाले थे । इनका कोई विशिष्ट ग्रन्थ तो नहीं पाया जाता परन्तु इनके कुछ फुटकर पद प्राप्त हुए हैं । जिसे “रैदास की बाणी” कहा जाता है । उनके चालीस पद “गुरु ग्रन्थ साहिब” में भी लिखे गये हैं ।

कबीर के सदृश इन्होंने भी निर्गुणप्रभु की उपासना की है । और ये भी जाति-पाँति एवं आडम्बर के विरोधी थे ।

३—**धर्मदास**— ये जाति के बनिये थे । और बाँधवगढ़ के निवासी थे । मथुरा से लौटते हुए कबीर के दर्शन इन्होंने किये । और उनके उपदेशों से प्रभावित होकर उनके अनुयायी बन गये । १५७५ में कबीर की मृत्यु पर ये ही उनके स्थान पर प्रतिष्ठित हुए । २० वर्ष तक कबीर पंथ का संचालन करते रहे । धर्मदास की बाणी का भी कबीर पंथियों में बड़ा आदर है । इनकी भाषा पूर्वी है । परन्तु इन्होंने केवल निर्गुण भक्ति और प्रभु प्रेम के पद कहे हैं, खंडन नहीं किया ।

४—**गुरु नानक**—प्रसिद्ध सिक्ख सम्प्रदाय के संस्थापक तथा प्रथम गुरु नानक देव का जन्म १५७६ विक्रमी में हुआ था । उनके पिता कानूचन्द खत्री लाहौर के समीप “तिलवंडी” में रहते थे । उनकी माता का नाम तृप्ता था । नाना के घर में जन्म होने के कारण इनका नाम नानक पड़ा । इन्होंने कुछ दिन ही वैवाहिक जीवन व्यतीत किया । इनकी पत्नी का नाम सुलङ्गणी था और उन्हें दो पुत्र—श्रीचंद और लक्ष्मी चन्द उत्पन्न हुए । बाद में इन्होंने सन्यास ग्रहण किया । श्रीचंद ने “उदासी” सम्प्रदाय चलाया ।

सन्यास लेने के बाद नानक की भेंट महात्मा कबीर से हुई ।

कबीर के उपदेशों का प्रभाव इनके हृदय पर बहुत अधिक था। नानक जी पंजाबी थे और पंजाब मुसलमानों का प्रधान केन्द्र था। वहाँ पर हिन्दुओं और मुसलमानों में संघर्ष न हो और दोनों जातियाँ प्रेम से रहें, इसलिए नानक ने दोनों जातियों को एक दूसरे के समीप लाने में बहुत बड़ा प्रयास किया। कबीर के मार्ग पर चलते हुए नानक जी ने हिन्दुओं और मुसलमानों में परस्पर सद्-प्रेम और सद्भावना को उत्पन्न किया। उनकी बाणी में हिन्दू और मुसलमानों के सिद्धान्तों का समन्वय प्रशंसनीय रीति से हुआ है। कबीर के निर्गुण-पंथ का प्रचार पंजाब में इन्होंने किया। उनके बहुत से शिष्य बन गये। जो कि बाद में शिष्य से सिक्ख कहलाए। नानक के उपदेशों का संग्रह सिक्ख सम्प्रदाय के प्रसिद्ध ग्रन्थ “गुरु ग्रन्थ साहब” में मिलता है। उनकी भाषा में पंजाबी भाषा का प्रभाव स्पष्ट है। कहीं २ ब्रज भाषा और खड़ी बोली के शब्दों का प्रयोग मिलता है। कबीर की भाँति ये भी पढ़े लिखे नहीं थे। परन्तु साधुओं की सत्संगति, जीवन तथा पर्थटन के अनुभवों से नानक के उपदेशों में एक विशेष प्रकार की प्रतिभा पाई जाती है। उनकी बाणी आत्मा की बाणी थी जिसका हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इनकी मृत्यु १५६६ में हुई।

५—दादूदयाल—यद्यपि सैद्धान्तिक दृष्टि से कबीर के मार्ग के दादू अनुयायी हैं, तथापि इन्होंने अपना एक अलग पंथ “दादू पंथ” के नाम से चलाया, दादूदास का जन्म सं० १६०१ वि० में गुजरात प्रान्त के अहमदाबाद नगर में हुआ था, ऐसा कहा जाता है। इनकी जाति के विषय में बड़ा मतभेद है। कुछ लोग इन्हें ब्राह्मण, कुछ मोची और कुछ धुनियाँ कहते हैं। संभावना इस

बात को है कि इनका जन्म किसी निम्न वर्ग में ही हुआ था । एक दंतकथा है कि साबरमती नदी में इन्हें बहता हुआ एक ब्राह्मण ने पाया था और उसी ने इनका पालन पोषण किया ।

ये कबीर के सिद्धान्तों के अनुयायी थे परन्तु जिनके शिष्य थे उनका पता नहीं । एक विद्वान् ने उन्हें कबीर के पुत्र कमाल का शिष्य लिखा है । जो भी हो इन्होंने कबीर के बतलाए हुए सिद्धान्तों का गुजरात और राजपूताने में प्रचार किया । इनके जीवन का बड़ा भाग जयपुर में बीता और सम्बत् १६६० में जयपुर राज्य के अन्तर्गत “भराने की पहाड़ी” नामक स्थान में उनकी मृत्यु हो गई । यह स्थान अब तक दादूपंथियों का मुख्य केन्द्र है ।

दादू का प्रचार-क्षेत्र राजपूताना और गुजरात था । उनकी भाषा में राजस्थानी भाषा का मेल अधिक पाया जाता है । और कुछ शब्द गुजराती के भी पाये जाते हैं । कहीं कहीं अरबी और फारसी भाषा के भी शब्दों का प्रयोग पाया जाता है । संत कवियों के समान दादू ने भी साखियाँ तथा पद लिखे हैं । जिनमें ‘गुरु की महिमा’ संसार की अनित्यता और जाति पाति की विरोधी भावनाओं के उपदेश मिलते हैं । संत कवियों में दादूदयाल सुशिक्षित थे । आचार्य क्षितिमोहन सेन की खोजों के आधार पर यह कहा जाता है कि ये जन्म से मुसलमान थे । और इनका नाम दाऊद था ।

६—सुन्दरदास—संत कवियों में सबसे अधिक विद्वान् सुन्दरदास थे । इनका जन्म सं० १६८३ वि० में जयपुर के समीप एक ग्राम में हुआ था । इनके पिता का नाम परमानन्द दास जी खंडेलवाल था । ६ वर्ष की अवस्था में ये दादू के शिष्य बन गये थे ग्यारह वर्ष की आयु में ये विद्याध्ययन के लिये काशी गये और बीस

वष वहाँ अध्ययन किया। इनकी भाषा बहुत ही परिमार्जित (Standard) है। इनकी रचनाओं में दोहे, चौपाई और सवैये पाये जाते हैं। इन्होंने ब्रजभाषा में काव्य रचना की है। इनकी मृत्यु सं० १७४६ में हुई। “सुन्दर विलास” प्रसिद्ध ग्रन्थ है। ये बाल ब्रह्मचारी थे।

७—मलूकदास—लाला सुन्दरदास खत्री के पुत्र मलूक दास का जन्म इलाहाबाद के “कड़ा” नामक स्थान में १६३१ में हुआ था। इनकी मृत्यु १७३६ में १०८ वर्ष की अवस्था में हुई। ये औरंगजेब के समय के प्रसिद्ध निर्गुण संत थे। इनकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। १—रत्नखान २—ज्ञान बोध। इनकी भाषा में अरबी और फारसी के शब्द अधिक हैं। आत्म-बोध वैराग्य और प्रेम पर इनकी बाणी मनोहर है।

अजगर करै न चाकरी,

पंछी करै न काम।

दास मलूका कह गये,

सबके दाता राम॥

मलूकदास का उपरोक्त दोहा आलसियों के लिये एक बड़ा सहारा बन गया है।

८—प्रेममार्गी शाखा

हमारे देश में प्रेमाख्यानों की परंपरा बहुत पुरानी है। प्राचीन वैदिक साहित्य में बहुत से सूक्त जिनमें संवाद हैं प्रेमाख्यान की कोटि में रखे जा सकते हैं। उदाहरणार्थ ऋग्वेद संहिता के ६५ वें सूक्त में उर्वशी और पुरुषा, का प्रेमाख्यान आया है।

महाभारत और पौराणिक साहित्य में बहुत से प्रेमाख्यान पाये जाते हैं। दुष्यन्त-शकुन्तला, नलदमयन्ती, अर्जुन-उर्वशी और अनिरुद्ध एवं उषा के प्रेमाख्यान महाभारत में पाये जाते हैं। महाभारत से ही प्रेरणा लेकर महाकवि कलिदास ने “अभिज्ञान शाकुन्तला और विक्रमोर्वशीय” नामक नाटकों की रचना की। श्री हर्ष ने नल-दमयन्ती की कथा के आधार पर “नेषध चरित” का निर्माण किया।

बौद्धों के पाली साहित्य, जैनियों की प्राकृत और अपभ्रंश कथाओं में बहुत से प्रेमाख्यान मिलते हैं। इस प्रकार के प्रेमाख्यान अधिकतर लोक गाथाओं से आये हैं।

इसी प्रकार हमें तमिल साहित्य में जैन कवि इलंगो द्वारा निर्मित “शिलप्यदिकारं” में कण्णकी और कोवलन की कथा मिलती है। विभिन्न प्रांतों में प्रचलित लोक गाथाओं में बहुत से प्रेमाख्यान पाये जाते हैं। राजस्थान पंजाब, गुजरात, काश्मीर तथा अन्य-अन्य प्रांतों की भाषाओं में ऐसी रचनाएं प्रचुरमात्रा में मिलती हैं। राजस्थानी का “ढोला मारुरा दूहा” एक

प्रेमाख्यान है। उसी प्रकार ससी-पुन्नू, हीर-राँभा आदि लोक गाथाएं पंजाब के अत्यन्त प्रसिद्ध प्रेमाख्यान हैं।

प्रेमाख्याननों का एक रूप हमें वीरगाथा काल की प्रेम कथाओं में भी मिलता है। इसमें कोई राजपुरुष या बादशाह किसी सुन्दरी का वर्णन सुनकर उसकी ओर आकृष्ट होता है और उसे पाने के लिये प्रयत्न करता है।

इस देश में सूफियों के बस जाने के बाद एक नवीन प्रेमाख्यान पद्धति का सूत्रपात हुआ जिसे उन्होंने अपने मत के प्रचार का साधन बनाया। ये लोग प्रेम के दो रूप उपस्थित करते हैं जिन्हें वे “इश्क मजाजी व इश्क हकीकी” कहते हैं। अर्थात् वे (इश्क मजाजी) सांसारिक प्रेम के द्वारा ईश्वरीय प्रेम (इश्क हकीकी) को प्राप्त करने का उपदेश देते हैं। सांसारिक प्रेम की कहानियों के लिए इन सूफियों ने भारतीय प्रेमाख्याननों की परंपराओं को लेकर उसमें अपनी मजहबी विचार-धाराओं को मिला कर एक नये ढंग से रक्खा। उन्होंने बहुत सी लोक प्रिय ऐतिहासिक और पौराणिक प्रेम कथाओं को लेकर उस पर अपना रंग चढ़ाया। इस्लाम के अंतर्गत सूफीयत का प्रचलन मुहम्मद साहब के प्रायः २०० वर्ष बाद हुआ। ये लोग ईश्वर और जीवका सम्बन्ध प्रेम का मानते हैं।

प्रेमकाव्यों की विशेषताएं

१—ये सब काव्य सांसारिक प्रेम के माध्यम द्वारा ईश्वरीय प्रेम की ओर संकेत करते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि संसार के मनुष्यों के प्रेम का आश्रय लेकर सूफी कवि आत्मा और परमात्मा के प्रेम की ओर इंगित करते हैं।

जिस प्रकार प्रेमी अपनी प्रेमिका के लिए आतुर रहता है उसी प्रकार आत्मा परमात्मा के दर्शन के लिए व्याकुल रहा करती है। इसका कारण यह है कि सफी कवि जीवन को आत्मा का परमात्मा से विरह मानते हैं।

२—इन ग्रन्थों की रचना फ़ारसी की मसनवी कविताओं की शैली पर हुई है अर्थात् इनमें (Chapters) सर्ग नहीं हैं।

३—इन सब पुस्तकों के प्रारंभ में परमात्मा (खुदा) की वन्दना है फिर मुहम्मद साहब की प्रशंसा के बाद कवियों के समकालीन राजाओं की स्तुति तथा गुरुओं की वन्दना के पश्चात् कथा का प्रारम्भ किया गया है। और कथा के बीच बीच में सफी सिद्धान्तों का प्रचार भी किया गया है।

४—उल्लेखनीय बात यह है कि सफी कवियों का मर्यादित क्षेत्र है। और वह अवध है। सारे ग्रन्थों की भाषा भी अवधी ही है। परन्तु लिपि उर्दू की है।

५—इन कवियों के ये काव्य दोहा और चौपाई छन्दों में लिखे गये हैं।

६—ये सब प्रेम-गाथा-कार कवि मुसलमान थे।

७—प्रभु को स्त्री रूप में इन्होंने माना है।

८—जीवन को, आत्मा का परमात्मा से वियोग माना गया है। और आत्मा उसके मिलन के लिए आतुर रहती है, तथा इन दोनों का मिलन मृत्यु होने पर ही होता है। इसलिए ये सब काव्य दुखान्त हैं।

९—हिन्दू कथानक लेकर कल्पना द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की बातें कही गयी हैं।

प्रेम मार्गी शाखा के कवि

१—कुतुबन—प्रेम मार्गी सूफी कवियों में कुतुबन के समय से ही प्रेम गाथाओं का प्रारम्भ हिन्दी में हुआ यद्यपि उनके पूर्व १६ वीं शती में कवि ईश्वरदास ने “सत्यवती कथा” नामक एक प्रेम कहानी दोहे चौपाइयों में लिखी थी। परन्तु उस कहानी पर सूफी विचारधारा का प्रभाव न होने से हम उसका सम्बन्ध इस शाखा से नहीं जोड़ते। कुतुबन शेरशाह के पिता हुमैनशाह के दरबार में रहते थे उनके गुरु का नाम शेख बुरहान था। विक्रम की १६ वीं शताब्दी का मध्य इनका समय है। इन्होंने १५५८ सं० में दोहे चौपाइयों में “मृगावती” नामक एक प्रेमकाव्य लिखा था। इसमें चन्द्रनगर के राजा गणपति देव के एक कुमार तथा कंचन पुर के राजा रूपमुरारि की कन्या “मृगावती” के प्रेम का वर्णन है।

२—मंभन—मृगावती के बाद दूसरा प्रेम काव्य “मधुमालती” लिखा गया जिसके रचयिता मंभन थे। यह काव्य १६वीं शती के अन्तिम चरण में लिखा गया। इस काव्य में दोहे और चौपाई छंदों का प्रयोग है इस ग्रन्थ में कर्नेस नगर के राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर और महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती के प्रेम का वर्णन है। यह ग्रन्थ पूरा नहीं मिलता है। एक खंडित प्रति मिलती है।

३—मलिक मुहम्मद जायसी—प्रेम गाथाकार कवियों में सबसे अधिक प्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी हुए जिनका लिखा हुआ ‘पद्मावत’ हिन्दी साहित्य का प्रसिद्ध ग्रन्थ है इस ग्रन्थ

में सिंहल की राजकुमारी पद्मावती और चित्तौड़ के राजा रत्नसेन के प्रेम का वर्णन है। कथा निम्न है :—

पद्मावती का तोता हीरामन पकड़ा जाता है और चित्तौड़ के बाजार में उसे एक ब्राह्मण खरीदता है। उस तोते को एक लाख का मूल्य देकर राजा खरीदता है कारण यह कि वह मनुष्य के सदृश बोलता है। इसी से रत्नसेन को पद्मावती के रूप का हाल मालूम पड़ता है। और काफी प्रयत्न के बाद उससे विवाह करता है। अल्लाउद्दीन के पास राघव चेतन नामक ब्राह्मण द्वारा पद्मावती की सुन्दरता का समाचार पहुँचता है। वह चित्तौड़ पर चढ़ाई करता है और रत्नसेन को धोखा देकर पकड़ लेता है। बाद में गिरा और बादल भी इसी भाँति से सातसौ योद्धाओं को औरतों के वेश में पालकी में बैठाकर अल्लाउद्दीन के पास जाते हैं और प्रार्थना करते हैं कि पद्मावती आपकी पत्नी होने से पूर्व राजा रत्नसेनसे अन्तिम बार मिलना चाहती है। इस प्रकार उसे धोखादेकर रत्नसेन को मुक्त कराया जाता है युद्ध में गिरा की मृत्यु होती है और अल्लाउद्दीन दिल्ली लौट जाता है। कुछ दिनों सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करने के बाद कुम्भलनेर के राजा देवपाल के साथ युद्ध में रत्नसेन की मृत्यु हो जाती है। और नागमती तथा पद्मावती सती हो जाती है। पीछे दुबारा आक्रमण के लिए अल्लाउद्दीन चित्तौड़ पहुँचता है। तो राख के सिवाय वहाँ कुछ नहीं था।

जायसी का रचना काल शेरशाह के राज्य काल में १६ शताब्दी के अंत में था। वे अवध प्रांत के “जायस” नामक कस्बे के रहने वाले थे। उनके गुरु सूफी फकीर शेख मेहदी थे। इनके अतिरिक्त इन्होंने पंडितों, फकीरों और साधुओं की संगति की थी। जिस

कारण इन्हें वेद, पुराण तथा कुरान आदि प्रसिद्ध धार्मिक ग्रन्थों की बातें ज्ञात थीं ये बहुत अधिक पढ़े लिखे न थे । ये कुरूप और काने थे तथा किसान थे ।

इनके दो ग्रन्थ और भी हैं (१) अखरावट और (२) आखरी कलाम । “अखरावट” में वर्णमाला के एक-एक अक्षर से लेकर मूक सिद्धान्तों के तत्त्व चौपाई छन्द में कहे गये हैं । “आखरी कलाम” में प्रलय का वर्णन है । यह “आखरी कलाम” बाबर के समय में लिखा गया क्योंकि उसमें बाबर की प्रशंसा है । अभी हाल में चित्ररेखा नामक इनकी एक और पुस्तक मिली है जिसका सम्पादन हिन्दी अकादमी, हैदराबाद के तत्वावधान में हो रहा है ।

४---उस्मान— ये जहाँगीर के सम-कालीन थे और गाजी-पुर के निवासी थे । इनके पिता का नाम शेख हुसैन था । इनके गुरु का नाम हाजी बाबा था । इन्होंने “चित्रावली” नामक पुस्तक लिखी है । इस पुस्तक की रचना में कवि ने जायसी का पूरा-पूरा अनुकरण विषय के सम्बन्ध में किया है । कहानी दूसरी है । इसमें नेपाल के राजा धरनीधर पंवार के पुत्र सुजान तथा रुपनगर की राजकुमारी “चित्रावली” के प्रेम का वर्णन है ।

५—शेख नबी— ये जौनपुर के पास “मऊ” नामक स्थान के निवासी थे तथा १६७६ में जहाँगीर के समय में वर्तमान थे । इन्होंने राजा ज्ञानदीप और रानी देवजानी के प्रेम के वर्णन में “ज्ञानदीप” नामक प्रेम काव्य लिखा है ।

६—कासिम शाह—ये बाराबंकी के निवासी थे । संवत् १७८८ के लगभग वर्तमान थे । इन्होंने राजा हंस और रानी जवाहर के प्रेम-कथानक के आधार पर “हंस जवाहिर” नामक प्रेम-काव्य की रचना की है ।

७—**नूरमुहम्मद**—ये जौनपुर और आजम गढ़ की सर-हद पर “सबर हद” नामक स्थान के निवासी थे और दिल्ली के के बादशाह मुहम्मदशाह के समकालीन थे । ये फारसी और हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे । इन्होंने संवत् १८०१ में “इन्द्रावती” नामक प्रेम-काव्य लिखा जिसमें कालिंजर के राजकुमार राजकुंवर और आजम पुर की राजकुमारी इन्द्रावती के प्रेम का वर्णन है । छन्द, दोहे और चौपाई हैं । इनकी दूसरी पुस्तक “अनुराग-बाँसुरी” है जिसे सं० १८२१ में लिखा गया । यह ग्रन्थ तत्त्व ज्ञान सम्बन्धी है । इसके छन्द, चौपाई और बरवै हैं । और संस्कृत के शब्दों का प्रयोग इसमें मिलता है । और भाषा में ब्रजभाषा के शब्द भी मिलते हैं ।

६—सगुण भक्ति

राम भक्ति शाखा

भक्ति का दूसरा रूप जो इस देश में प्रचलित हुआ उसे सगुण भक्ति कहते हैं। यह सगुण भक्ति विष्णु के दो अवतार राम और कृष्ण की भक्ति के रूप में प्रारम्भ हुई, जिनका मूल स्रोत भागवत धर्म में मिलता है। ६वीं शताब्दी में शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रचार किया और ११वीं शती में रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैतवाद के अंतर्गत विष्णु भक्ति का प्रचार किया। विक्रम की १४ वीं शती के अन्त में काशी में रामानुजाचार्य की शिष्य परंपरा में राघवानन्द हुए जिन्होंने राम भक्ति का प्रचार किया। राघवानंद के शिष्य रामानंद थे। रामानंद की शिष्य परंपरा में गोस्वामी तुलसीदास हुए जो कि हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं।

राम भक्ति शाखा के कवि

तुलसीदास —तुलसीदास का जन्म सं० १५५४ में उत्तर प्रदेश में बाँदा जिले के अन्तर्गत राजापुर नामक ग्राम में हुआ था। कुछ विद्वान् राजापुर के स्थान पर सोरों ग्राम में इनका जन्म हुआ ऐसा मानते हैं। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे था। रहीम खान खाना के एक दोहे के आधार पर यह कहा जाता है कि माता का नाम “हुलसी” था।

“गोद लिये हुलसी फिरे, तुलसी सों सुत होय ।”

पैदा होते ही उनके माता-पिता ने इन्हें छोड़ दिया जिसका कारण यह बताया जाना है कि प्रथम तो ये मूल नक्षत्र में उत्पन्न हुए थे इसलिये माता-पिता के लिए घातक थे । और दूसरे जन्म के समय ही इनके मुख में दाँत थे और ये चार-पाँच वर्ष के बालक समान प्रतीत होते थे, तथा पैदा होते ही इनके मुँह से ‘राम’ शब्द का स्पष्ट उच्चारण हुआ था । इसी लिए माता-पिता ने त्याग दिया था । डा० त्रिपाठी के अनुसार यह घटना उचित नहीं मालूम पड़ती क्योंकि अभी तक मूल शांति करवायी जाती है और वे इतने निर्दयी नहीं थे कि अपनं बच्चे को निकाल दें । सम्भव है वे इनके पैदा होते ही मर गये हों ।

माता-पिता के त्याग देने पर इस बालक का पालन-पोषण एक दासी ने किया । परन्तु दुर्भाग्यवश पाँच वर्ष के होते ही वह दासी भी मर गई । इसके बाद इनका कुछ समय बड़ी कठिनाइयों में बीता था जब कि भिक्षा-वृत्ति इन्हें अपनाती पड़ी थी । बाद में ये शूकरक्षेत्र के बाबा नरहरिदास के पास पहुँचे और इन्होंने ही इस बालक को पाला-पोसा और पढ़ाया-लिखाया । इन्हीं से इन्होंने रामकथा भी सुनी थी । बाद में काशी गये जहाँ उन्होंने ‘शेष-सनातन’ जी से वेद-वेदान्त, दर्शन, इतिहास, पुराण आदि सब धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया । १५ वर्ष तक विद्याभ्यास करने के बाद ये फिर अपनी जन्मभूमि राजापुर को गये । तब तक इनके परिवार के सब लोग मर चुके थे । राजापुर में यमुना पार के एक ब्राह्मण जिनका नाम दीनबन्धु पाठक था, उन्होंने इनकी विद्वत्ता एवं योग्यता को देखकर अपनी पुत्री ‘रत्नावली’ के साथ इनका विवाह कर दिया । ये अपनी पत्नी से बहुत प्यार

करते थे। एक दिन तुलसीदास की अनुपस्थिति में आवश्यक, कार्य-
वश रत्नावली मायके चली गई। घर लौटने पर तुलसीदास ने जब
पत्नी को न पाया तो तुरन्त ससुराल की ओर प्रस्थान किया। उस
समय रात्रि होते हुए भी और घनघोर वृष्टि के कारण नदी नालों
के बाढ़ से युक्त होने पर भी आप प्रत्येक बाधा को पार करते हुए
ससुराल पहुँच ही गये। उनके इस प्रकार आगमन पर उनकी
मत्नी ने उन्हें धिक्कारते हुए निम्नलिखित वचन कहे :—

“अस्थि-चर्म-मय देह मम, तामें ऐसी प्रीति,

तैसी जो श्रीगम मह होति न तौ भव भीति ।”

पत्नी के वाक्य तुलसी के हृदय पर शर तुल्य प्रभावदायक सिद्ध
हुए और वे तुरन्त घर आदि छोड़कर काशी गये। उसके उपरान्त
विरक्त होकर तुलसी ने १६ वर्ष तक तीर्थ-यात्रा की। और साधुओं
की सत्संगति करते हुए ज्ञान का संचय करते रहे। अन्त में ये
राम की जन्मभूमि अयोध्या पहुँचे और वहाँ पर सं० १६३१ में
इन्होंने ‘रामचरितमानस’ का लिखना प्रारम्भ किया जिसे इन्होंने
२ वर्ष ७ मास में पूरा किया। कहा जाता है कि रामायण के
किष्किन्धा काण्ड तथा अयोध्याकाण्ड काशी में लिखे गये हैं।
गोस्वामी जी की समस्त रचनाओं में ‘रामचरितमानस’ सर्वश्रेष्ठ
ग्रन्थ है और इस ग्रन्थ का प्रचार उत्तर भारत में बहुत अधिक
हुआ है। तुलसीदास ने इस पुस्तक के अतिरिक्त अन्य भी बहुत
से ग्रन्थ लिखे हैं। जिनमें ग्यारह ग्रन्थ तो निर्विवाद इनके लिखे
हुये पाये जाते हैं। एक-दो ग्रन्थों को छोड़कर इनके सब ग्रन्थों का
विषय राम का जीवन और उनकी चर्चा ही है। एक-दो जो ग्रन्थ
इस विषय के अन्तर्गत नहीं हैं उनमें श्रीकृष्ण के विषय में लिखा गया
है जो कि राम के समान विष्णु के ही अवतार थे दूसरी एक पुस्तक

‘पार्वती-मंगल’ में पार्वती-शिव के विवाह का वर्णन है। परन्तु यह पुस्तक ‘रामचरितमानस’ की पूरक पुस्तक है। क्योंकि उसमें पार्वती-शिव के विवाह का वर्णन संक्षिप्त रूप से किया गया है। इसीलिए कहा जाता है कि तुलसीदास ने नर काव्य नहीं लिया है। प्रभु-चरित्र के अतिरिक्त नर-चरित्र का वर्णन करने को तुलसी सरस्वती का दुरुपयोग मानते हैं। वे कहते हैं :—

“कीजै प्राकृत नर गुण गाना,
सिर धुन गिरा लागि पछिताना ॥”

तुलसी के ग्रन्थ

१. रामचरितमानस, २. विनय-पत्रिका, ३. कवितावली, ४. दोहावली, ५. गीतावली, ६. कृष्णगीतावली, ७. बरवै रामायण, ८ रामललानहछू, ९ वैराग्य संदीपनी, १० जानकी-मंगल ११ पार्वतीमंगल, १२ रामाज्ञा प्रश्न ।

तुलसी के ग्रन्थों की भाषा अवधी और ब्रज है उनका ‘रामचरित मानस’ अवधी भाषा में लिखा गया है। और अन्य ग्रन्थों में ब्रज भाषा का प्रयोग साधिकार किया गया है। राम का सम्पूर्ण जीवन तुलसी का विषय होने से उनके काव्य में सम्पूर्ण रसों और अलंकारों का प्रयोग पाया जाता है। सूर के सदृश इनका क्षेत्र सीमित नहीं है और इसीलिए विविधता इनके काव्य में पाई जाती है। एक और उल्लेखनीय बात यह है कि इन्होंने अपने समय में प्रचलित दोहा, चौपाई, गीत, कवित्त, छप्पय, सवैया तथा बरवै, सोरठा आदि समस्त छन्दों में कविता की है। जो उनकी सर्वतो-मुखी प्रतिभा का परिचायक है।

उनके काव्य में शान्ति, शील और सौन्दर्य की समुचित छटा देखने को मिलती है। तुलसी ने अपने काव्य में लोक धर्म और मर्यादा की उपेक्षा नहीं की है प्रत्युत उस पर विशेष बल दिया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने उस समय विचलित हिन्दू-जाति में राम के आधार पर एकता को लाने का प्रयत्न किया। उन्होंने शैव-वैष्णव को समन्वित किया तथा भक्ति, भाव एवं कर्म का भी समन्वय उनकी भक्ति में मिलता है। इस प्रकार उन्होंने रामचरित्र के द्वारा सोती हुई हिन्दू-जाति को जागृत किया और डूबते हुए हिन्दू-धर्म को बचाया। इनकी भक्ति दास्य भाव की थी।

इस महान् कवि की मृत्यु संवत् १६८० में गंगा के किनारे काशी में हुई। इनकी मृत्यु के विषय में निम्न दोहा प्रसिद्ध है :—

“संवत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।

श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर ॥

परन्तु शुक्ल जी श्रावण शुक्ल सप्तमी न मानकर श्रावण कृष्ण ताज मानते हैं।

२—नाभादास— ये गलता (राजपूताना) के स्वामी अग्रदास के शिष्य थे। संवत् १६५७ के आस-पास इनका वर्तमान होना पाया जाता है। इन्होंने राम के चरित्र-सम्बन्धी बहुत से पुटकल पद लिखे हैं। परन्तु जिस ग्रन्थ के कारण ये बहुत अधिक प्रसिद्ध हुए उस ग्रन्थ का नाम “भक्तमाल” है। इस ग्रन्थ में नाभादास जी ने अपने से पूर्व समस्त महात्माओं की जीवनी एवं महिमा लिखी है। तुलसीदास जी से इनकी भेंट हुई थी। इन्होंने दो ‘अष्टयाम’ भी लिखे हैं एक ब्रज भाषा गद्य में तथा दूसरा ‘मानस’ को दोहा चौपाई की शैली पर। ‘भक्तमाल’ प्रामाणिक माना जाता है।

३—**प्राणचन्द्र चौहान**—इन्होंने राम के जीवन की कथा को नाटक के रूप में संवत् १६६७ में लिखा जिसे 'रामायण महा नाटक' कहा जाता है। यह नाटक पद्य में है।

४—**हृदयराम**—इन्होंने सं० १६८० में संस्कृत की पुस्तक 'हनुमन्नाटक' का हिन्दी में रूपान्तर किया जो कि बहुत प्रसिद्ध है।

गोस्वामी तुलसीदास के ग्रन्थों के कारण राम-भक्ति की कविताएँ इतनी ऊँची उठ गईं कि उनके बाद के कवियों की प्रसिद्धि अधिक न हो सकी।

उधर कुछ दिनों से राम-भक्ति में भी कृष्ण-भक्ति के समान राम लीला विहार आदि की कल्पना कुछ लोग करने लगे हैं। ये लोग उसे 'स्वसुखी शाखा' कहते हैं। उनमें अयोध्या के रामचरण दास जी का नाम उल्लेखनीय है। इसमें पति पत्नी भाव है। पावन चित्रकूट की भावना वृंदावन के समान की गई है। और इस प्रकार विषय-वासना की ओर राम-भक्ति को यह रसिक समाज ले जा रहा है जो कि निन्दनीय प्रयत्न है। एक और शाखा "तत्सुखी शाखा" है जिसमें राम में सखी भाव का आरोप किया गया है।

१० - कृष्णभक्ति शाखा

भारतीय महापुरुषों के सम्बन्ध में यह बात विशेष कर प्रसिद्ध है कि वे अपने जीवन काल में यश और प्रसिद्धि पाते हैं परन्तु कुछ समय के उपरान्त उनकी उपासना ईश्वर सत्त्व की जाती है। वाल्मीकि के मूल रामायण ग्रंथ में राम का वर्णन एक शक्तिशाली राजा के रूप में किया गया है। भगवान् के रूप में नहीं। परन्तु बाद में उन्हें प्रभु का अवतार मान लिया गया है। भगवान् कृष्ण की उपासना का विकास भी उसी प्रकार हुआ है जिस प्रकार राम की उपासना का। वेद व्यास की मूल महाभारत पुस्तक के प्रारम्भिक पर्वों में कृष्ण भगवान् नहीं बने हैं। परन्तु भगवद् गीता में तथा उसके बाद के ग्रंथों में कृष्ण को भगवान् का पूर्णावतार मानकर कृष्ण की उपासना की जाने लगी। बाद में कृष्ण भक्तों के अनेक सम्प्रदाय बने।

कृष्णभक्त कवियों में सर्वप्रथम विद्यापति हो चुके हैं। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में महाप्रभु वल्लभाचार्य ने सारे देश में कृष्ण-भक्ति का प्रचार किया। उनका जन्म काशी में एक तैलंग ब्राह्मण के घर में संवत् १५३५ वि० को हुआ था। श्री नन्ददुलारे जी के आधार पर इनका जन्म संवत् १५३० माना जाता है।

इन्होंने वृन्दावन में कृष्ण-मन्दिर बनवाया जिसे श्रीनाथ का मन्दिर कहते हैं। और वहाँ से वे कृष्ण-भक्ति का प्रचार करते रहे। उनकी मृत्यु १५८७ वि० में होने के बाद उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ ने वहाँ 'अष्टछाप' की स्थापना की। इसमें आठ

कृष्ण-भक्त कवि थे । 'अष्ट छाप' के उन आठ कवियों में सूरदास जी सर्वश्रेष्ठ हैं ।

१—सूरदास—सूरदास के जीवन के विषय में प्रमाणित रूप से 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' से निम्न बातें मालूम पड़ती हैं । कि ये आगरा और मथुरा के बीच रुणकता नामक ग्राम में गऊ-घाट पर साधू रूप में रहा करते थे । स्वामी हरिदास जी की "चौरासी वार्ता" के आधार पर ये दिल्ली के निकट "सीही" ग्राम में उत्पन्न हुए थे । संवत् १५८० में एक दिन उधर से जाते हुए महाप्रभु बल्लभाचार्य जब गऊघाट पर उतरे तब सूरदास जी ने उन्हें अपना बनाया हुआ एक पद सुनाया । जिसे सुनकर महाप्रभु बल्लभाचार्य ने उनसे कहा "सूर हो के ऐसी धिधियात काहे को है । कछु भगवान् लीला वर्णन करो ।" इन वचनों का सूरदास पर बड़ा प्रभाव पड़ा । महाप्रभु बल्लभाचार्य भी सूरदास को अपने साथ वृन्दावन ले गये और उन्हें अपना शिष्य बनाया । वहाँ पर उन्होंने सूरदास को भागवत के दशम स्कन्ध की कथा सुना कर, उसमें वर्णित कृष्ण की उस कथा का वर्णन जनता की भाषा 'ब्रजभाषा' में लिखने की आज्ञा दी । सूरदास ने महाप्रभु की आज्ञा से कृष्ण की कथा को गीतों का रूप दिया । इन लिखे गीतों का संग्रह 'सूर सागर' कहा जाता है । कहा जाता है कि इस ग्रन्थ में सवा लाख पदों का संग्रह था पर अब 'सूरसागर' की जो प्रतियाँ मिलती हैं उनमें छः हजार से अधिक पद नहीं मिलते । सूरदास जी को श्रीनाथ के मन्दिर में कीर्तन और सेवा कार्य भी मिल गया । सूरसागर के बाद इन्होंने 'सूर सारावली' ग्रन्थ लिखा था । इनका और एक ग्रन्थ 'साहित्य लहरी' भी १६०७ में लिखा गया । और भी ग्रन्थ मिलते हैं ।

सूरदास की मृत्यु गोवर्धन पर्वत की तलहटी में 'पारसोली' नामक ग्राम में हुई।

'सूर सारावली' सूरदास ने ६७ वर्ष की अवस्था में लिखी थी जिसका उल्लेख उस पुस्तक में है और इसके पूर्व सूरसागर लिखा जा चुका था। शुक्ल जी कहते हैं कि 'सूर सागर' और 'सूर सारावली' के बाद ही सूरदास जी ने 'साहित्य लहरी' लिखी। 'साहित्य लहरी' में अलंकार और दृष्ट कूट के पद हैं और 'साहित्य लहरी' १६०७ में लिखी गई। यह मानना पड़ता है कि साहित्य क्रीड़ा का यह ग्रन्थ सूर ने 'सूर सागर' से छुट्टी पाकर लिखा होगा। उसके दो वर्ष पहले भी यदि 'सूर सारावली' की रचना हुई हो तो संवत् १६०२ में सूरदास ६७ वर्ष के थे। इस दृष्टि में उनका जन्म काल संवत् १५३५ के लगभग निश्चित किया जा सकता है। मिश्रबन्धु १५४० तो मानते हैं तथा मृत्यु काल १६४० के आसपास अनुमित होता है। 'साहित्य लहरी' के ११८ वें पद के अनुसार ये चंद वरदाई के वंशज थे। पर यह पद प्रामाण्य है।

वल्लभाचार्य की मृत्यु के बाद उनके पुत्र गोसाईं विठ्ठलदास ने आठ सर्वोत्तम कृष्ण भक्त कवियों को चुनकर "अष्ट छाप" की प्रतिष्ठा की। सूरदास का नाम 'अष्ट छाप' के इन आठ कवियों में सर्वोपरि है। अष्ट छाप के आठ कवि निम्नलिखित हैं :—

१. सूरदास, २. कुंभनदास, ३. परमानन्ददास, ४. कृष्णदास
५. छीत स्वामी ६. गोविन्द स्वामी, ७. चतुर्भुजदास ८. नन्द-
दास।

सूरदास के 'सूर सागर' में भागवत के दशम-स्कन्ध की कथा गीतों के रूप में कही गई है। यह कथा प्रबन्ध-काव्य के रूप में नहीं अपितु प्रगीत मुक्तकों के रूप में कही गई है। इसका हर एक

पद अपने आप में पूर्ण अर्थ रखता है। उस समय ये गीत बहुत अधिक लोक प्रिय हुए। और इन गीतों तथा कृष्ण भक्ति की आड़ में हिन्दू सभ्यता और संस्कृति की रक्षा संभव हो सकी। इन गीतों के गान के लिए हजारों लोग इकट्ठे होते और इस प्रकार उस संगीत से मुग्ध होकर हिन्दू धर्म में अपना विश्वास नहीं खोते थे। उस समय इन गीतों ने प्रचार का वह कार्य किया जो आज प्रेस करता है। ये गीत इतने अधिक लोकप्रिय हुए कि आज तक भी मुसलमान भी इन गीतों को गाते हैं। और उन गीतों के कारण ही ब्रज-भाषा साहित्य के क्षेत्र में उच्च पद पर आसीन हो गई और उसे राज-दरबार तक में स्थान मिल गया। स्वयं अकबर भी ब्रज-भाषा में कविता करता था। इस प्रकार गाँव की ब्रज-वाला राजसभा की रानी बन गयी।

‘सूरसागर’ में कृष्ण जन्म से लेकर उनकी बाल-लीलाओं के बाद कृष्ण के मथुरा जाने तथा उनके वियोग में गोपियों को विरह तक का वर्णन है। इस प्रकार इन गीतों में शृङ्गार और वात्सल्य रस का प्रवाह ही हमें दिखाई पड़ता है। अपने इस सीमित-क्षेत्र में मूरदास अद्वितीय और सर्वश्रेष्ठ हैं।

इसके अतिरिक्त कृष्ण काव्य ने हिन्दी में नये-नये भावों का सृजन किया। जैसे :

१. मैया कबहूँ बड़ेगी चोटी ।
२. माखन-चोरी, मुरली प्रसंग ।
३. बालकों का लड़ना—कृष्ण काले—सब गोरे ।
४. गोपियों का प्रेम और विरह वर्णन ।

५. भ्रमर गीत प्रसंग में निर्गुण और सगुण भक्ति आदि का वर्णन। इत्यादि ।

सूरदास की कीर्ति को अमर कर देने के लिए और हिन्दू साहित्य के उच्च कवियों में स्थान दिलाने के लिए उनका 'सूर मागर' ही पर्याप्त है। सूरदास, अँधे थे, परन्तु वे जन्मान्ध थे या बाद में अँधे हुए, इस विषय में बड़ा मतभेद है। उनके जोड़ का कवि हिन्दी साहित्य में तुलसी को छोड़कर दृमरा नहीं है। और इन दोनों में कौन बड़ा है यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। परन्तु कृष्ण काव्य अधिक प्रान्तों, अधिक समुदायों और वर्गों में प्रचलित है। यहाँ तक कि विजातियों में भी जैसे रहीम, रसखान, इत्यादि कवियों की कविताओं में कृष्ण-भक्ति का उल्लेख मिलता है। साथ ही साथ यह भी सच है कि राम-भक्ति में लोक-पक्ष और लोक मर्यादा का विशेष ध्यान रखा गया। सूर की भक्ति मख्य तथा वात्सल्य भाव की थी।

२— नन्ददास— अष्ट छाप के अन्य कवियों में नन्ददास का नाम काफी प्रसिद्ध है। ये सूर के समकालीन थे और सूरदास के बाद भी लगभग १६२५ विक्रमी तक जीवित थे। उनके जीवन के विषय में गोमाई विठ्ठलनाथ के पुत्र गोकुलनाथ द्वारा लिखित “दो सौ बापन वैष्णवों की वार्ता” में लिखा है कि ये तुलसीदास के भाई थे। उन्होंने लिखे तो कई ग्रंथ, पर इनकी प्रसिद्धि के कारण दो ग्रंथ हैं :— १. रासपंचाध्यायी और २. भ्रमर गीत। इनकी कथा का आधार भी भागवत ही है। ‘राम पंचाध्यायी’ के पाँच अध्यायों में रामलीला का वर्णन और ‘भ्रमर गीत’ में उन्होंने निर्गुणोपासना की अपेक्षा सगुण उपासना को अधिक सरल और सुगम सिद्ध किया है। और यह हिन्दी साहित्य का उच्चकोटि का विरह-काव्य है। “और सब गाढ़िया नन्द दास जड़िया।” यह उक्ति उनके भाषा सौष्ठव के लिए कही गई है।

सूरदास और नन्ददास के अतिरिक्त अन्य जो छः कवि अष्टछाप के हैं वे उतने अधिक प्रसिद्ध नहीं हैं। इन कवियों ने भी कृष्ण भक्ति में पद लिखे हैं जिनका विषय वही भागवत का दशम स्कन्ध है।

३- कृष्ण दास—१. भ्रमर गीत, २. प्रेम तत्त्व निरूपण,
और फुटकल पद।

४-परमानन्द दास—परमानन्द सागर, (८३५ पद)
इसमें सूर की कविता के सब गुण हैं।

५—कुम्भन दास—फुटकल पद।

६—चतुर्भुज दास—१. द्वादश पग, २. भक्ति प्रताप, ३.
हितजू को मंगल तथा फुटकल पद।

७—छीत स्वामी—फुटकल पद।

८—गोविन्द स्वामी—फुटकल पद।

९—हित हरिवंश—अष्टछाप के बाहर रह कर कृष्ण-भक्ति काव्य की रचना करने वाले 'हित हरिवंश' का नाम उल्लेखनीय है। इनका जन्म सं० १५५६ में मथुरा से चार मील दक्षिण 'बाढ़ गाँव' में हुआ था। ये गौड़ ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम केशव मिश्र था। इन्होंने राधा की उपासना प्रारंभ करके 'राधा वल्लभ सम्प्रदाय' की स्थापना की। इनकी दो पुस्तकें १. 'राधा सुधानिधि' और २. "हित चौरामी" प्राप्त होती हैं। पहली संस्कृत भाषा में हैं। इनके मत से राधा की उपासना के कृष्ण की प्रसन्नता मरजता से प्राप्त हो सकती है। इनके कुछ फुटकल पद भी मिलते हैं। जिनमें इनके मत के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

१० — गदाधर भट्ट — दक्षिणी ब्राह्मण थे और सोलहवीं शती के अन्तिम चरण में विद्यमान थे । और १६८४ के पूर्व इन्होंने चैतन्य महाप्रभु से दीक्षा ली थी । हिन्दी में कुछ कृटकल पद लिखे हैं । संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित होने से भाषा संस्कृत-गर्भित थी । महाप्रभु के आदेश से जिन शिष्यों ने गौड़ीय सम्प्रदाय के संस्कृत ग्रन्थ लिखे उनमें आप भी थे ।

११ — मीराबाई — इनका जन्म संवत् १५७३ में 'चोकड़ी' नामक ग्राम में हुआ था । इनके पिता मेड़ता के ठाकुर राठौर रत्नसिंह थे । आरंभ से ही मीरा कृष्ण भक्ति में तल्लीन रहती थी । इनका विवाह उदयपुर के महाराणा कुमार भोजराज के साथ हुआ था । विवाह के पाँच दिनों के उपरान्त इनके पति का देहावसान हो गया । विवाह के बाद भी उनकी कृष्णभक्ति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ । ये प्रायः मन्दिर में जाकर उपस्थित भक्तों और संतों के बीच श्रीकृष्ण की मूर्ति के सम्मुख भक्ति के आवेश में आनन्दमग्न होकर गाने व नाचने लगती थीं । कहते हैं कि उनके इस राजकुल-विरुद्ध आचरण से इनके सम्बन्धी लोक-निन्दा के भय से रुष्ट रहा करते थे । यहाँ तक कहा जाता है कि इन्हें कई बार विष देने का भी प्रयत्न किया गया पर उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ । अन्त में घरवालों के व्यवहार से खिन्न होकर ये वृन्दावन को चली गई और वहाँ के मन्दिरों में कृष्ण-भक्ति में मग्न होकर भजन किया करती थीं । अपने जीवन के अंत समय में वे कृष्ण की राजधानी द्वारिकापुरी के दर्शन को गई और वहीं पर संवत् १६०३ में इनकी मृत्यु हो गई ।

मीरा की उपासना, माधुर्य भाव' की थी । वे अपने इष्टदेव
फा० ६

कृष्ण की उपासना प्रियतम या पति-रूप में किया करती थीं । उनकी ये पंक्तियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं :—

“मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई ।

जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई ॥

मीरा का नाम भारत के प्रधान भक्तों में है । इनके कुछ पद राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा में हैं । और कुछ शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा में । इनके पाँच ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं

१—नरसी जी का मायरा, २—गीत गोविन्द टीका, ३—राग सोरठ के पद, ४—राग गोविन्द, ५—मीरा की पदावली । मीरा के पद इतने अधिक लोकप्रिय हुए हैं कि आज तक भी गायक एवं जनता उनके पदों का गान किया करती है ।

१२ - स्वामी हरिदास - ये महात्मा वृन्दावन के निवासी थे । उन्होंने निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्तर्गत ‘टट्टी सम्प्रदाय’ की स्थापना की । ये अकबर के समय के एक प्रसिद्ध भक्त तथा संगीत कला-प्रवीण थे । ‘गायनाचार्य तानसेन’ उन्हीं के शिष्य थे । इनका कविता काल सं० १६०० से १६१७ तक है । उन्होंने कृष्ण भक्ति के जो पद बनाये वे राग-रागनियों के योग्य थे । इनके पदों के तीन संग्रह मिलते हैं १ हरिदास जी के ग्रंथ, २ स्वामी हरिदास के पद, ३ हरिदास जी की वाणी ।

१३—सूरदास मदनमोहन - ये अकबर के राज्य काल में संडौले के अमीन थे । और गौड़ ब्राह्मण थे । ये भक्तों की बड़ी सेवा किया करते थे । कहते हैं कि एक बार इस तहसील में तेरह लाख रुपये मालगुजारी के आये थे जो उन्होंने साधुओं को खिला-पिला दिये थे और शाही खजाने के सन्दूक में कंकर-पत्थर भरके, एक कागज पर निम्न पद लिखकर उसे भेज दिया ।

“तेरह लाख संडीले आये, सब साधुन मिलि गटके ।

मूरदास मदनमोहन, आधी रातहिं सटके ॥”

कृष्ण भक्ति सम्बन्धी कुछ इनके पृष्ठकल पद मिलते हैं । इनका रचना-काल १५६० से १६०० के मध्य में है । अपने जीवन के अन्तिम दिन विरक्त होकर उन्होंने वृन्दावन में बिताए ।

१४—श्रीभट्ट—ये एक काश्मीरी ब्राह्मण थे और निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी थे । इनका जन्म वि० १५६५ में अनुमित किया जाता है । इन्होंने ‘राधा कृष्ण’ की युगल-मूर्ति की उपासना का प्रचार किया । ‘राधा कृष्ण’ की भक्ति में इन्होंने ‘युगल-शासक’ नामक सौ पदों का एक ग्रन्थ बनाया । इसके अतिरिक्त एक अन्य पुस्तक ‘आदि बानी’ भी उन्होंने लिखी ।

१५—रसखान—ये दिल्ली के एक पठान सरदार थे । अपनी पुस्तक “प्रेम वाटिका” के अनुसार ये पठान बादशाहों के शाही खानदान से सम्बन्धित थे । रसखान गोसाँई विठ्ठलदास जी के बड़े कृपापात्र शिष्य थे । एक दिन श्रीमद्भगवत् का फारसी अनुवाद पढ़ते-पढ़ते सांसारिक प्रेम की ओर से फिरकर कृष्ण-भक्ति में लग गये । और ये वृन्दावन चले गये । प्रेम-वाटिका के एक दोहे में इस घटना का उल्लेख मिलता है ।

‘रसखान’ इनका उपनाम है । परन्तु यह नाम इतना अधिक प्रसिद्ध हुआ कि वास्तविक नाम का पता नहीं चलता । इनका ‘रसखान’ नाम ‘यथा नाम तथा गुण’ था क्योंकि इनके सबैये वास्तव में ही रस की खान हैं ।

इनकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है जो कि बहुत ही सरस तथा शब्दाढम्बरविहीन है । इनका रचनाकाल संवत् १६४० के उपरान्त माना जाता है । इनकी दो पुस्तकें प्राप्य हैं :

१ 'सुजान रसखान' कवित्त और सवैया छन्दों में लिखा गया है। और २ 'प्रेम बाटिका' दोहों में। 'प्रेम बाटिका' का रचनाकाल सं० १६७१ वि० है। कृष्ण और ब्रजभूमि के प्रति रसखान का प्रेम अनन्य है। इनके सवैसे बहुत 'अधिक प्रसिद्ध हैं। जिनसे उनके इस सच्चे प्रेम का आनन्द मिलता है।

(१) "मानुष हों तो वही रसखान, बसों ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन,
जो पशु हों तो कहा बस मेरो, शरों नित नंद की धेनु मँभारन,
पाहन हों तो वहीं गिरि कों, जो लियों हरि छत्र पुरन्दर कारन,
जो खग हों तो बसोरों करौ, मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की शाखा

(२) या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ पर को तज डारौ ।
झाठहूँ सिद्धि नवौ निधि को सुख, नंद को गाय चराय विसारौ ॥
रसखान कबौ इन आँखिन सौ, ब्रज के बन, बाग तड़ाग निहारौ ।
कोटिकहूँ कलधौत के धाम, करील. के कुंजन ऊपर बारौ ॥

१६—ध्रुवदास—ये वृन्दावन के रहनेवाले थे। स्वप्न में हरिवंश के शिष्य हुये थे। अधिक जीवन उपलब्ध नहीं है। उन्होंने ४० ग्रंथ लिखे और दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया आदि अनेक छन्दों में भक्ति और प्रेम का वर्णन किया है। नाभादास की 'भक्तमाल' के अनुकरण पर 'भक्त रागावली' इन्होंने लिखी, जिसमें उनके समय तक के भक्तों का उल्लेख है।

११—भक्ति काल के अन्य कवि

भक्तिकाल में ही कुछ ऐसे भी कवि हुए हैं जिन्होंने बादशाहों एवं राजदरबारों का आश्रय पाकर नीति, शृङ्गार आदि की रचनाएँ की हैं। भक्त कवियों के समकालीन प्रसिद्ध मुगल सम्राट् अकबर के राज-दरबार में अनेक कवियों को आश्रय मिला। अकबर की नीति-कुशलता कहिये या उदारता, उसने देश की परम्परागत संस्कृति, साहित्य और भाषा की उन्नति में योग दिया, जिससे कला के क्षेत्र में उत्साह का संचार हुआ। स्वयं सम्राट् अकबर भी ब्रजभाषा में कविता किया करता था। उसके दरबार की शोभा को नरहरि, गंग, मनोहर, रहीम तथा बीरबल सहश कवि तथा तानसेन जैसे गायक बढ़ाया करते थे। इस प्रकार उस समय अकबरी दरबार के कवियों का एक वर्ग था।

दूसरा वर्ग कुछ अन्य राजाओं के आश्रित कवियों का तथा कुछ स्वतन्त्र कवियों का था। इस वर्ग में छीहल, लालचदास, नरोत्तमदास, जमाल, सेनापति तथा पुहकर आदि कवि उल्लेखनीय हैं।

तीसरे वर्ग के अन्तर्गत कुछ ऐसे कवि हैं जिनके विषय का सम्बन्ध तो रीतिकाल से है पर ये हुए भक्तिकाल में ही। इस वर्ग के मुख्य कवि निम्नलिखित हैं :— १. कृपाराम, २. बलभद्र मिश्र, ३. केशवदास, ४. सैयद मुबारक अली बिलग्रामी तथा ५. सुन्दर।

कवि परिचय—

१—छोछल—ये राजपूताने के थे। संवत् १५७५ में इन्होंने 'पंच सहेली' नामक पुस्तिका राजस्थानी मिश्रित भाषा में दोहे छन्द में लिखी। इनकी एक अन्य पुस्तिका 'बावनी' नामक मिलती है। जिसमें बावन दोहे हैं।

२—लालचदास—ये रायवरेली के हलवाई थे। संवत् १५८५ में 'हरि चरित्र' और १५८० में 'भागवत दशम स्कन्ध भाषा' नामक पुस्तक अवधी भाषा में दोहे और चौपाई छन्दों में लिखी है।

३—नरहरि बन्दीजन—उनका जन्म १५६२ में और मृत्यु १६६७ में हुई थी। इन्हें अकबर ने महापात्र उपाधि दी थी। और इसके दरबार में इनका बड़ा सम्मान था। इन्होंने छप्पय और कवित्त छन्दों में अपनी रचनाएँ की हैं। तीन ग्रंथ प्रसिद्ध हैं :—१. रुक्मिणी मंगल, २. छप्पय नीति, ३. कवित्त संग्रह। कहते हैं इनके एक छप्पय को सुनकर अकबर ने अपने साम्राज्य में गोवध का निषेध कर दिया था :—

अरिहूँ दंत तिनुधरे, ताहि नहिं मार सकत कोइ।

हम संतत तिनु चरहिं, बचन उच्चरहिं दीन होइ॥

अमृत पय नित सबहि, बच्छ महि थम्बन जावहि।

हिन्दूहिं मधुर न देहिं, कटुक तुरकहिं न पियावहिं॥

कह कवि 'नरहरि' अकबर सुनौ, विनवति गडजोरि करन।

अपराध कौन मोहि मारियत, मुणहु चाम सेवइ चरन॥

४—नरोत्तमदास—ये सीतापुर के 'बाड़ी' नामक कस्बे के

रहनेवाले थे। इनका 'सुदामा चरित्र' ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। 'शिवसिंह सरोज' के अनुसार ये सं० १६०२ में विद्यमान थे। इनका और एक खगडकाव्य 'ध्रुव चरित्र' भी प्राप्त होता है।

५—आलम ये भी अकबर के दरबारी कवि थे। इन्होंने सं० १६३१ में 'माधवानल कामकंदला' नामक प्रेम कहानी दोहे और चौपाई तथा सोरठ छन्दों में लिखी हैं। इसमें पाँच-पाँच चौपाइयों के बाद एक दोहा या सोरठा है।

६ बीरबल और टोडरमल—ये दोनों भी अकबरी दरबार के रत्न थे। एक 'ब्रह्म' उपनाम से तथा दूसरे टोडरमल के नाम से कविता किया करते थे। बीरबल अकबर के मन्त्री थे। उनकी वाक्-चातुरी और मनोरञ्जकता सर्वप्रसिद्ध है। बीरबल ने जो कवित्त लिखे हैं उनका संग्रह भरतपुर के पुस्तकालय में है। राजा टोडरमल अकबर के भूमि-विभाग के मन्त्री थे। इनके नीति सम्बन्धी पद्य और कवित्त फटकल रूप में मिलते हैं। बीरबल का जन्मस्थान तिकवाँपुर है और वे सं० १६३२ में थे। इसका पता प्रयाग के अशोक स्तम्भ से लगता है। जन्म-मरण की तिथि अज्ञात है। राजा टोडरमल का जीवन-काल १५८० से १६४६ तक था।

७—गंग—ये अकबर के दरबारी कवि थे। रहीम इनका बहुत सम्मान करते थे। इनका जन्म एवं कुल अज्ञात है। इन्होंने शृङ्गार एवं वीर रस की रचनाएँ की हैं। इनका कविता काल १७ वीं शताब्दी के अन्त तक था। कहते हैं कि एक छप्पय पर रहीम खानखाना ने इन्हें ३६ लाख रुपये प्रदान किये थे।

यथा :—

चकित भँवर रहि गयो, गमन नहिं करत कमल बन ।
 अहि फन मनि नहिं लेत, तेज नहिं बहत पवन बन ॥
 हँस मानसर तज्यों चक्क चक्की न मिले अति ।
 बहु सुन्दरी पद्मिनी पुरुष न चहै, न करै रति ॥
 खल भलित सेस कवि 'गंग' भन, आमित तेज रवि रथ खस्यो ।
 खानानखाना बैरम सुवन जबहि कोध करि तंग कस्यो ॥
 इनका ग्रंथ कोई भी उपलब्ध नहीं । इनकी मृत्यु बड़ी ही करुणा-
 जनक हुई । किसी राजा ने इन्हें हाथी के पाँव तले कुचलवा
 दिया ।

८—मनोहर कवि—ये भी अकबर के दरबारी थे । इनका
 उपनाम 'तौसनी' था । इन्होंने 'शत प्रश्नोत्तरी' नाम की एक पुस्तक
 लिखी । इसके अतिरिक्त नीति और शृङ्गार के फुटकल दोहे भी
 इन्होंने लिखे ।

९—अब्दुर्रहीम खानखाना—ये प्रसिद्ध मुगल सरदार
 बैरम खॉ खानखाना के पुत्र थे । उनका जन्म संवत् १६१० में हुआ
 था । संस्कृत, अरबी, फारसी के बड़े विद्वान् थे । अकबर के
 प्रधान सेनापति तथा मन्त्री थे । इतने महत्त्वपूर्ण पद पर रहते हुए
 इन्होंने साहित्य-सेवा की । ये बड़े दानी और परोपकारी थे ।
 इनकी दानशीलता की उपमा कर्ण से दी जाती थी । विद्वानों का
 बड़ा आदर करते थे । गंग को एक छप्पय पर उन्होंने ही ३६ लाख
 रुपये प्रदान किये थे, जो कि उनके विद्वत्प्रेम का परिचायक है । ये
 अकबर से लेकर जहाँगीर के राज्य-काल तक जीवित रहे । इनके
 जीवन का अन्तिम काल बहुत ही कष्टप्रद था । इनकी भेंट
 गोस्वामी तुलसीदास से हुई थी । और ये उनके बड़े भक्त थे ।

तुलसी और कबीर के सदृश इनके पद भी सर्व-साधारण के मुँह पर हैं। रहीम के नीति के दोहे बहुत ही सुन्दर और मार्मिक हैं। और ये हृदय पर पूरा प्रभाव डालते हैं। उनकी रचनाओं में आत्मानुभूति है। इसके अतिरिक्त बरवै, सोरठा और कवित्त छन्दों में भी रचना की है। हिन्दी में बरवै छन्द को रहीम ने ही आरंभ किया था। इस छन्द के प्रारम्भ करने के कारण निम्नलिखित पद है :—

“प्रेम प्रीति का बग्गा, चलेहु लगाय ।

सींचन की सुधि लीजो, मुरझि न जाय ॥

कहते हैं इस पद को उनके नव-विवाहित कर्मचारी की पत्नी ने लिख भेजा क्योंकि वह कर्मचारी अपने विवाह के बाद एक वर्ष तक नौकरी पर नहीं गया। यह पद रहीम को इतना पसन्द आया कि उन्होंने इसी छंद में एक पुस्तक लिख दी जिसका नाम १. ‘बरवै नायिका भेद’ है। इसके अतिरिक्त इनके निम्न ग्रन्थ हैं :—

२. रहीम दोहावली या सतसई, ३. शृंगार सोरठ ४. मद-नाष्टक, ५. रास पंचाध्यायी, ६. रहीम रत्नावली ।

इनकी भाषा अवधी और ब्रज दोनों हैं। इनका “बरवै नायिका-भेद” अवधी भाषा में है। रहीम की बहुत अधिक प्रसिद्धि का कारण उनके दोहे हैं। कई भाषाओं के पारंगत होने से इन्होंने ‘चित्र काव्य’ की भी रचना की। इनकी इन रचनाओं में संस्कृत, हिन्दी तथा फारसी एवं अन्य भाषाओं के शब्दों का मेल है। इस प्रकार की रचनाएँ उनके ‘खेट कौतुकम्’ नामक ज्योतिष ग्रन्थ में मिलती हैं।

इसके इन्होंने फारसी का एक दीवान भी बनाया था। रहीम का देहावसान १६८३ में हुआ था।

१०—सेनापति—ये अनूपशहर के रहनेवाले थे। इनके पिता गंगाधर कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। जन्म संवत् १६४६ है। हिन्दी के प्रकृति के कवियों में उनका स्थान बहुत ऊँचा है। इनके जैसा ऋतु-वर्णन किसी शृंगारी कवि ने नहीं किया। और 'षड्-ऋतु वर्णन' हृदयग्राही है। जीवन के अन्त काल की रचनाएँ उनकी भक्ति और वैराग्य से परिपूर्ण हैं। इन रचनाओं का संग्रह 'कवित्त रत्नाकर' है पर यह ग्रन्थ अप्रामाणित है। इनके उपास्य-देव 'राम' हैं। एक और ग्रन्थ 'काव्य कल्पद्रुम' भी प्राप्त होता है। भाषा ब्रज भाषा है, जिसका प्रयोग कवि ने साधिकार किया है। अलंकारों का प्रयोग उत्तम है।

११—पुहकर कवि—ये मैनपुरी जिले के अन्तर्गत परतापपुर निवासी थे। पर गुजरात में सोमनाथ के पास रहते थे। जहाँगीर के समकालीन थे। १६७३ में 'रस रतन' नामक ग्रन्थ इन्होंने जेल में लिखा था। जेल जाने का कारण किसी बात पर जहाँगीर का रुष्ट होना था। परन्तु इस ग्रन्थ को सुनकर बादशाह ने प्रसन्न होकर इन्हें छोड़ दिया। इस ग्रन्थ में रंभावती और सूरसेन की प्रेम-कथा दोहे, चौपाई छन्दों में कही गई है।

१२—लालचन्द या लक्ष्मिदय—इन्होंने संवत् १७०० में 'पद्मिनी चरित्र' नामक प्रबन्ध काव्य लिखा। जिसमें

रत्नसेन और पद्मिनी की कथा है । जायसी और इनके कथानक में बड़ा भेद है । इसके अनुसार भोजन ठीक न होने से रानी के इस कहने पर कि “मेरा भोजन अच्छा नहीं तो पद्मिनी को ब्याह लाओ”, राजा पद्मिनी की खोज में जाता है । जबकि जायसी के ‘पद्मावत’ में हीरामन तोते से पद्मावती का वर्णन सुनकर राजा उसकी ओर आकर्षित होता है । यद्यपि इस ग्रन्थ में कहानी प्रबन्ध रूप में है तथापि गीति-काव्य सी छन्द रचना है ।

भक्ति-काल के रीति-ग्रन्थकार कावे

रीति ग्रन्थ-- रीति ग्रन्थ वे ग्रन्थ हैं जिनमें रस, अलंकार और छन्दों के विषय में लिखा होता है । इन ग्रन्थों में कविता करने की रीति या विशेषता बताई जाती है ।

१—**कृपाराम**—इनका वृत्तान्त अप्राप्य है । इन्होंने संवत् १५६८ में ‘हित तरंगिणी’ नामक एक ग्रन्थ दोहे छन्द में रस रीति पर लिखा था । यह ग्रन्थ हिन्दी ग्रन्थों में सबसे पुराना है । इनके कई दोहे बिहारी के समान हैं ।

२—**बलभद्र मिश्र**--ये ओरछा-निवासी थे । प्रसिद्ध कवि केशवदास के बड़े भाई थे । पिता का नाम पंडित काशीनाथ था । जन्म संवत् १६०० के लगभग है । ‘नखशिख’ शृंगार का प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिसमें नायिका के अंगों का वर्णन है । इनके अन्य चार ग्रन्थ भी हैं :—

१. बलभद्र, व्याकरण, २. हनुमन्नाटक, ३. गोवर्धन सतसई

टीका, ४. दूषण विचार। 'दूषण विचार' में काव्य दोषों पर विचार किया गया है।

३—केशवदास—केशवदास पंडित कृष्णदत्त के पौत्र तथा काशीनाथ के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १६१२ और मृत्यु संवत् १६७४ है। ओरछा नरेश महाराज रामसिंह के भाई इन्द्रजीत सिंह के यहाँ इनका बड़ा सम्मान था। इनका घराना अपने पांडित्य के कारण प्रसिद्ध था। इनके पूर्वज, पिता और भाई संस्कृत के अच्छे पंडित थे। इन परिस्थितियों ने उन्हें अपने समय का प्रधान शास्त्रज्ञ एवं कवि बनने में बड़ी सहायता की। इनके उत्पन्न होने के कुछ पूर्व से ही अलंकार, रस आदि संस्कृत के रीति ग्रन्थों की ओर हिन्दी के कुछ कवियों का ध्यान आकृष्ट हुआ था। तब तक हिन्दी की काव्य-रचना बहुत उच्च कोटि की हो चुकी थी। पर काव्यांग के निरूपण की ओर कवियों का ध्यान नहीं गया था। केशव संस्कृत के पंडित थे इसीलिए उनका ध्यान स्वाभाविक रूप से हिन्दी की इस कमी की ओर गया।

केशव ने अलंकारों पर 'कवि प्रिया' और रस पर 'रसिक प्रिया' पुस्तकें लिखीं। इन ग्रन्थों की सामग्री केशव ने संस्कृत ग्रन्थों से ली है। अपनी रचनाओं में उन्होंने संस्कृत से लेकर अनेक उक्तियाँ भरी हैं।

इनके अतिरिक्त केशव ने दो प्रबन्ध-काव्य भी लिखे— १. वीरसिंह देव चरित्र और २. रामचन्द्रिका। रामचन्द्रिका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। परन्तु इसमें प्रबन्ध की ओर कवि का ध्यान कम गया है। इन ग्रन्थों का रचना-काल १६५८ वि० है।

यद्यपि केशव के ग्रन्थों में इतनी सरसता नहीं है तथापि

काव्यांगों का विस्तृत परिचय कराकर उन्होंने आगे आनेवाले कवियों का मार्ग खोल दिया। उनके ५०-६० वर्ष बाद हिन्दी में लक्ष्मण ग्रन्थों की भरमार हो गई।

‘अलंकार’ शब्द का प्रयोग केशव ने व्यापक रूप से किया है। इसमें रस, आदि सब अलंकार के अन्तर्गत ही आते हैं। केशव भामह, उद्धव एवं दण्डी के सदृश काव्य में अलंकार को प्रधान मानते हैं। परन्तु केशव के ५०-६० वर्ष बाद हिन्दी में रीति ग्रन्थों की जो अखण्ड परम्परा चली उन पर मम्मठ के “काव्य प्रकाश” विश्वनाथ के “साहित्य दर्पण” तथा जयदेव के “चन्द्रालोक” और अप्पय दीक्षित के “कुवलयानन्द” प्रभाव है। जिनमें रस को प्रधानता दी गई है। इन ग्रन्थों में प्रधानता अलंकार को नहीं दी गई है। अपितु ‘रस’ को दी गई है। उनका मत है “रसात्मकं वाक्यं काव्यं”।

केशव के कुल सात ग्रंथ हैं—१. कविप्रिया, २. रसिकप्रिया ३. रामचन्द्रिका, ४. वीरसिंहदेव चरित्र, ५. विज्ञान गीता, ६. रतन बावनी, ७. जहाँगीर जस चन्द्रिका।

परन्तु प्रसिद्ध प्रथम चार ही हैं।

४—सैयद मुबारक अली विलग्रामी—उनका जन्म संवत् १६४० में हुआ था। इनका कविता-काल १६७० के आस-पास माना जाता है। ये संस्कृत, फारसी, हिन्दी और अरबी के सहृदय कवि थे। इन्होंने शृङ्गार की ही कविता की है। उन्होंने नायिका के अंगों का वर्णन बड़े विस्तार से किया है। कहा जाता है कि इन्होंने स्त्रियों के दस अंगों को लेकर एक-एक अंग पर सौ-सौ दोहे लिखे हैं। पर प्राप्त दो ही अंग होते हैं १. अलक शतक,

२. तिल शतक । इनके अतिरिक्त इनके कुछ फुटकल कवित्त और सबैये भी पाये जाते हैं ।

५—सुन्दर - ये ग्वालियर निवासी ब्राह्मण थे । और जहाँगीर के दरबार में कविता सुनाया करते थे । बादशाह ने इन्हें 'महाकविराय' की उपाधि दी थी । इन्होंने १६८८ वि० में 'सुन्दर शृंगार' नामक नायिका भेद का ग्रंथ लिखा । इसके अतिरिक्त दो और ग्रंथ 'सिंहासन बत्तीसी' और 'बारह मासा' भी मिलते हैं ।

१२—रीति काल

(संवत् १७०० वि० से १६०० वि० तक)

रीति-काल का प्रारम्भ संवत् १७०० वि० से माना जाता है, यद्यपि उसके कुछ पूर्व से ही रीति ग्रन्थ लिखे जाने लगे थे । संवत् १५६८ में कृपगाम, हित 'तरंगिणी' नामक ग्रंथ रस के विषय में लिख चुके थे । उसी समय सोहनलाल मिश्र ने 'शृङ्गार सागर' नामक ग्रंथ शृङ्गार रस पर लिखा था । नरहरि कवि के साथी करनेस कवि ने 'कर्णभरणा', 'श्रुति भूषण' और 'भूपभूषण' नामक तीन अलंकार ग्रंथ लिखे थे । ये कवि नरहरि कवि के साथ अकबर के दरबार में आया-जाया करते थे । इनके बाद बलभद्र मिश्र ने 'नख शिख', रहीम ने 'बरवै नायिका भेद' तथा मुबारक ने 'अलक शतक' और 'तिल शतक' ग्रंथ लिखे थे । परन्तु उन सभी कवियों ने रीति सम्बन्धी एक ही अंग पर अपना ध्यान रखा । इनके बाद केशव ने रीति के सभी ग्रंथों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया । और इन्होंने 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' दो रीति ग्रन्थ लिखे । इस प्रकार रीति ग्रन्थों का आविर्भाव भक्ति-काल में ही हो चुका था । जिस प्रकार भाषा के बन जाने के बाद उसके नियंत्रण के लिए व्याकरण की आवश्यकता होती है उसी प्रकार उच्चकोटि के काव्य-ग्रन्थों के निर्माण के बाद रीति ग्रंथों की आवश्यकता हुआ करती है । हिन्दी साहित्य, भक्ति-काल में अपने ऐश्वर्य को प्राप्त कर चुका था तथा मूर और तुलसी के सदृश श्रेष्ठतम कवि इस स्वर्ण-युग में अपनी उत्कृष्ट रचनाएँ कर चुके थे । इसलिए इनके कुछ समय पश्चात्

भक्ति-काल में ही रीति-ग्रन्थों का सूत्रपात हो चुका था। रीति-ग्रंथों की ओर कवियों का ध्यान संस्कृत के रीति-ग्रंथों ने और भी अधिक आकर्षित किया और इन ग्रन्थों की सहायता एवं आधार पर ही हिन्दी के रीति ग्रंथ लिखे गये।

केशव के रीति-ग्रंथों का आधार भामह का 'काव्यालंकार', उद्धव का 'अलङ्कार सार संग्रह' और दण्डी का 'काव्यादर्श' है। जिसमें 'अलङ्कार' शब्द का प्रयोग व्यापक है और 'अलङ्कार' को काव्य की आत्मा माना गया है। परन्तु केशव के ५०-६० वर्ष बाद रीति-ग्रंथों की जो अखंड परम्परा चिन्तामणि त्रिपाठी से संवत् १७०० से प्राग्भूत हुई उनका आधार मम्मठ का 'काव्य-प्रकाश' विश्वनाथ का 'साहित्य दर्पण' तथा जयदेव का 'चन्द्रालोक' था और इनमें अलङ्कार को काव्य की आत्मा न मान कर 'रस' को प्रधानता दी गई है। इस तरह हिन्दी साहित्य के रीति-काव्य का प्रारम्भ संवत् १७०० वि० से ही किया जाता है उसके पूर्व से नहीं।

संवत् १७०० के बाद कविगण रीति-ग्रंथों की ओर इतने अधिक आकृष्ट हुए कि वे ऐसे ग्रंथ लिख कर ही अपने कार्य की सफलता मान लेते थे। अतः इस काल के कवियों का ध्यान साहित्य के अन्य विषयों की ओर कम गया। उनको क्षेत्र संकुचित और सीमित हो गया। इन कवियों ने यही नियम बना लिया कि एक दोहे में अलङ्कार या रस का लक्षण (परिभाषा) लिख कर फिर उसका एक उदाहरण अपने कवित्त और सवैया छन्द में लिखते थे। उसमें भी अलङ्कार और रस की अपेक्षा 'नायिका भेद' लिखने की ओर कवियों का ध्यान अधिक था। इसलिए इस काल में शृङ्गार रस की मुक्तक रचनाएँ बहुत हुईं। इस रस का इतना अधिक विस्तार इस काल में हुआ कि एक-एक अंग को लेकर स्वतन्त्र ग्रन्थ रचे गये। अतः कुछ लोग इस काल को 'शृङ्गार-काल' भी कहते हैं।

शृङ्गार-प्रियता का कारण यह है कि इस काल में हिन्दी कविता पुनः राज दरबारी वस्तु बन गई। कवि प्रभु भक्ति को छोड़कर आश्रयदाता राजा-महाराजों की तुष्टि को प्रमुख समझने लगे। उस समय में मुगल साम्राज्य के शान्त पर विलास पूर्ण वातावरण में कवि व जनता ऐसी डूबी कि वह अपने पुराने आदर्शों को भूल गई। हिन्दी में तब फिर राजाओं और नवाबों की कीर्ति का यशोगान अथवा उनके प्रसन्न करने के लिए रीति-सम्बन्धी काव्य रचनाएँ होने लगीं। बात यह है कि कविता जब दरबारी वस्तु हो जाती है और उसे कुछ थोड़े से लोगों की रुचि के अनुकूल बनाया जाने लगता है। तब उसमें कृत्रिमता आ जाती है। और वह जन-साधारण के जीवन से सम्बन्धित न रहकर जीवन के एक संकुचित क्षेत्र में बँध जाती है। कविता में कला का प्रवेश अधिक होने लगता है तब उसमें भावना और जीवन की गति धीमी पड़ जाती है और धीरे-धीरे कवि शब्दों के पांडित्य की ओर, उनकी सजावट तथा आडम्बर की ओर अधिक ध्यान देने लगते हैं। हिन्दी साहित्य में भी वही हुआ और रीति काल में हिन्दी कविता धीरे-धीरे जन-साधारण के जीवन से हटकर आमोद-प्रामोद और विनोद की वस्तु बन गई। कवियों का मुख्य काम आश्रयदाता विलासी राजाओं को प्रसन्न करना था। यहाँ तक कि कुछ कवियों ने राधा-कृष्ण को भी साधारण नायक-नायिका बनाकर उनकी केलि का वर्णन करके अपने कलुषित हृदय का परिचय दिया, तथा धनोपार्जन किया। धन-लिप्सा इस काल के रीति कवियों की विशेषता थी। शृङ्गार रस निन्द्य नहीं पर उसका दुरुपयोग देश, जाति एवं व्यक्ति की उन्नति का बाधक बन जाता है। कुछ कवियों ने इस काल में वीर रस, शान्त रस आदि की भी रचनाएँ की हैं। भगवद्-भक्ति की भी कविता की गई है परन्तु प्रधानता शृङ्गार रस की ही रही।

और कहीं-कहीं तो शृंगार के वर्णन अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गये हैं ।

इस काल के कवियों की भाषा ब्रज और अवधी भाषाएँ ही रहीं । इन भाषाओं में अरबी और फारसी के शब्दों का मिश्रण भी हुआ है । परन्तु भाषा का प्रयोग किसी विशेष नियम के अन्तर्गत नहीं हुआ । शब्द बाहुल्य तो पाया गया पर शब्दों का प्रयोग मनमाना था । एक शब्द को कवि लोग अपनी इच्छा और आवश्यकता के अनुसार दस-दस प्रकार से प्रयोग में ले आते थे । यहाँ तक कि अरबी, फारसी के शब्दों का भी प्रयोग तोड़-मरोड़ कर हुआ है । तात्पर्य यह है कि भाषा पर नियंत्रण नहीं था । और भाषा के क्षेत्र में काफी गड़बड़ी देखी जाती थी ।

इस काल के कवियों के प्रिय छन्द कवित्त, सवैया तथा छप्पय रहे । उद् के छन्द भी लिये गये । संस्कृत के छन्दों को भी अपनाया गया और लोकगीतों के छन्द जैसे कजली, सोहर, होली इत्यादि नये छन्द भी अपनाए गये ।

१३—रीति-काल के रीति ग्रन्थकार कवि

१—चिन्तामणि त्रिपाठी—चिन्तामणि त्रिपाठी का जन्म संवत् १६६६ वि० के लगभग हुआ था। इनका जन्मस्थान तिकवाँपुर (जिला कानपुर) था। ये चार भाई थे १. चिन्तामणि, २. भूषण, ३. मतिराम, ४. जयशंकर। इन चारों में पहले तीन भाइयों का नाम हिन्दी साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है। “शिवसिंह-सरोज” के अनुसार चिन्तामणि बहुत दिनों तक नागपुर के राजा मकरंद शाह भोंसले के यहाँ रहे। इनको सोलंकी राजा रुद्रशाह और शाहजहाँ ने भी पुरस्कार देकर सम्मानित किया था।

इन्होंने १७०३ में ‘कवि कुल कल्प तरु’ नामक अलंकार ग्रन्थ लिखा और। ‘छन्द विचार’ नामक एक बहुत बड़ा पिलग ग्रन्थ बनाया। इनके अतिरिक्त ३. ‘काव्य विवेक’, ४. काव्य प्रकाश’ ५. ‘रामायण’ ग्रन्थ भी इन्होंने लिखे। इनकी भाषा ब्रज भाषा है जो कि अनुप्रास युक्त ललित और शुद्ध है।

२—महाराजा जसवंतसिंह—ये मारवाड़ के प्रसिद्ध राजा हो चुके हैं। इनका जन्म संवत् १६८३ में हुआ था। पिता का नाम गजसिंह था। अपने बड़े भाई अमरसिंह के राजगद्दी पर के अधिकार से च्युत होने पर आपको अपने पिता की मृत्यु के बाद संवत् १६९५ में राजगद्दी मिली। ये अपने समय के बड़े प्रतापी राजा थे। शाहजहाँ और औरंगजेब से इनकी मित्रता थी। ये बड़े विद्वान् एवं विद्याप्रेमी थे और इनके दरबार में विद्वानों एवं कवियों का सम्मान हुआ करता था।

जसवंतसिंह स्वयं भी ग्रन्थ लिखते थे, तथा दूसरों को लिखने के लिए प्रोत्साहित करते थे ।

आपकी गणना हिन्दी-साहित्य में आचार्य-कोटि में है । उन्होंने अलंकारों पर 'भाषा भूषण' नामक ग्रन्थ लिखा । यह ग्रन्थ 'चन्द्रालोक' के आधार पर लिखा गया । जिस प्रकार 'चन्द्रालोक' में प्रायः एक ही श्लोक में अलंकार का लक्षण और उदाहरण हैं उसी प्रकार उसमें भी एक ही दोहे में अलंकारों के लक्षण और उदाहरण दोनों हैं । यह ग्रन्थ छोटा सा एवं सरल है इसीलिए अलंकार शास्त्र के अध्ययन करने वालों के लिए बड़ा उपयोगी है । इस ग्रन्थ के अतिरिक्त इनके छः ग्रन्थ और भी मिलते हैं जिनमें 'चन्द्रोदय नाटक' प्रसिद्ध है जो कि पद्य रूप में लिखा गया ।

यद्यपि महाराजा जसवंतसिंह के ग्रन्थ पद्य में हैं तथापि उनकी प्रसिद्धि कवि रूप में उतनी नहीं जितनी आचार्य रूप में है । इनके पूर्व के लक्षण-ग्रन्थकार कवियों का ध्यान विषय प्रतिपादन में उतना नहीं था जितना कविता की ओर, परन्तु आपने केशव के समान इस ग्रन्थ में विषय का प्रतिपादन आचार्य के रूप में किया है ।

३—बिहारीलाल—इनका जन्म ग्वालियर के पास बसुवा गोविन्दपुर नामक गाँव में संवत् १६६० वि० आस-पास हुआ था । ऐसा माना जाता है । ये चौबे ब्राह्मण थे । कुछ विद्वानों का ऐसा मत है कि ये आचार्य केशवदास के पुत्र थे । और कुछ ऐसा कहते हैं कि इनके पिता का नाम केशवराय था और उन्होंने बिहारीलाल को आचार्य केशवदास के पास अध्ययन के लिए भेजा था । एक दोहे के अनुसार उनकी बाल्यावस्था

बुंदेलखंड में बीती और तरुणावस्था में वे अपनी ससुराल मथुरा में जाकर रहने लग गये । बाद में ये जयपुर के राजा जयसिंह के दरबार में रहने लगे थे । कहा जाता है कि जब बिहारी महाराजा जयसिंह के यहाँ पहुँचे तब वे अपनी नव-विवाहिता पत्नी के प्रेम में इतने मग्न थे कि राज-काज देखने की भी सुध उन्हें नहीं थी । सरदारों की सलाह पर बिहारी ने निम्नलिखित दोहा लिखकर राजा के पास भिजवाया ।

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल ।

अली कली ही सों बँध्यो, आगे कौन हवाल ॥

कहते हैं कि इस दोहे ने राजा पर बहुत प्रभाव डाला और वे राज दरबार में आने लगे और तभी से बिहारी का सम्मान उनके दरबार में बहुत बढ़ गया । महाराजा की आज्ञा से बिहारी दोहे बना बना कर उन्हें सुनाते और राजा उन्हें सुनकर प्रति दोहे पर एक अशरफी पुरस्कार में दिया करते थे । इस प्रकार बने हुए दोहों का संग्रह 'बिहारी सतसई' है । 'शृंगार रस' के ग्रन्थों में जितनी प्रसिद्धि और सम्मान 'बिहारी सतसई' का है उतना अन्य किसी ग्रन्थ का नहीं । इस ग्रन्थ पर जितनी टीकाएँ लिखी गईं उतनी अन्य किसी पर नहीं । यह ग्रन्थ हिन्दी साहित्य का एक अनुपम रत्न है । सतसई के दोहों के लिए यह कहा जाता है :—

सतसैया के दोहरे, ज्यों नायक के तीर ।

देखन में छोटे लगे, धाव करें गम्भीर ॥

यद्यपि बिहारी ने एक ही ग्रन्थ लिखा तथापि उनकी गणना हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों में है । बात यह है कि कवि की प्रसिद्धि का कारण रचनाओं की अधिकता नहीं है बल्कि उसका गुण

होता है। बिहारी के छोटे-छोटे दो पंक्ति के दोहों में बहुत बड़े भाव भरे हैं। बिहारी सतसई में मुख्यतः शृंगार रस के दोहे हैं, परन्तु कहीं कहीं नीति तथा भक्ति के दोहे भी हैं।

बिहारी की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। उसमें शब्दों की उतनी तोड़-मरोड़ नहीं जितनी भूषण या देव में पाई जाती है। इनकी मृत्यु संवत् १७२० के आस-पास हुई।

✓ ४—भूषण—इनका जन्मकाल संवत् १६७० है। और ये चिन्तामणि और मतिराम के भाई हैं। इनका वास्तविक नाम क्या है इसका पता नहीं चलता। 'भूषण' नाम उन्हें उपाधि के रूप में चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र से प्राप्त हुआ था। परन्तु यह भूषण नाम ही प्रसिद्धि को प्राप्त कर गया। ये कई राजाओं के यहाँ रहे। रुद्र के बाद छत्रसाल और शिवाजी के यहाँ उनका बड़ा सम्मान हुआ। छत्रसाल ने तो एक बार उनकी पालकी में अपना कंधा लगाया था और शिवाजी ने इन्हें लाखों रुपये पुरस्कार में दिये। इनकी मृत्यु संवत् १७७२ में हुई। सर जदुनाथ सरकार जिन्होंने मुगल-काल पर कार्य किया है उनका कथन है कि भूषण शिवाजी के दरबार में नहीं थे। मिश्रबन्धुओं ने इन्हें राष्ट्रकवि माना है।

रीति-काल के रीति-ग्रंथों की परम्परा में भूषण ने अपना 'शिवराज भूषण' नामक अलङ्कार ग्रंथ लिखा तथापि भूषण रीति ग्रन्थकार के रूप में उतने विख्यात नहीं जितने एक वीर रस के प्रसिद्ध कवि के रूप में। भूषण ने अपने वीर काव्य के नायक छत्रसाल और शिवाजी को बनाया। इन्होंने शिवाजी की प्रशंसा में 'शिवा बावनी' और छत्रसाल की प्रशंसा में 'छत्र साल दशक' लिखा। इनके पद वीर रस के अद्वितीय भण्डार हैं। और इन्हीं के

कारण भूषण बहुत अधिक लोक-प्रिय भी हुए। भूषण को हिन्दू जाति का प्रतिनिधि कवि कहा जा सकता है। इनके तीन और ग्रन्थ भी मिलते हैं—‘भूषण उल्लास’, ‘दूषण उल्लास’ और ‘भूषण हजारा’।

भूषण की भाषा में ओज है, और यह भावानुकूल भी है, परन्तु अव्यवस्थित है। व्याकरण के नियमों का उल्लंघन साधारण सी बात है। शब्दों को भी भूषण ने बहुत बिगाड़ा है फिर भी भूषण महान् कवि हैं। कुछ लोग भूषण पर साम्प्रदायिक होने का आरोप करते हैं। परन्तु यह आरोप उचित नहीं है। क्योंकि भारत उस समय केवल मात्र हिन्दुओं का प्रदेश था और मुसलमान यहाँ आकर तथा रहकर भी विदेशी विजेताओं के समान अपना सम्बन्ध रखते थे। इन अवस्थाओं में भूषण की रचनाएँ सर्वथा राष्ट्रीय थीं।

५—मतिराम—ये चिन्तामणि और भूषण के भाई हैं। और संवत् १६७४ के लगभग तिकवाँ पुर में उत्पन्न हुए। ये बूँदी नरेश महाराजा भावसिंह के यहाँ बहुत दिन तक रहे। और उन्हीं के दरबार में रहते समय १. ‘ललित ललाम’ नामक अलङ्कार ग्रंथ संवत् १७१६ और १७४५ के बीच में लिखा। उन्होंने एक पिंगल ग्रंथ २. छन्द सार नामक लिखा जिसको सोलंकी नरेश शंभुनाथ को समर्पित किया गया है। इनका तीसरा और सर्वप्रसिद्ध ग्रंथ ३. ‘रस राग’ है। दो और भी ग्रंथ इनके लिखे हुए मिलते हैं :— ४. ‘साहित्य सार’ और ५. ‘मतिराम सतसई’ भी लिखी है। इनके ग्रंथों में ‘रस राज’ और ‘ललित ललाम’ बहुत अधिक प्रसिद्ध एवं उच्चकोटि के उपयोगी ग्रंथ हैं।

इनकी भाषा बहुत सरस एवं आडम्बर-विहीन है। न इसमें भावों की कृत्रिमता है न भाषा की। भाषा ब्रजभाषा है।

६—नेवाज—ये संवत् १७३७ के लगभग वर्तमान थे । और जाति के ब्राह्मण थे । ये पन्ना नरेश छत्रसाल के यहाँ रहते थे । इन्होंने 'शकुन्तला नाटक' संवत् १०३७ में बनाया था । जिसका आख्यान दोहा, चौपाई और संवैया छन्दों में लिखा है । कुछ फुटकल कवित्त भी इन्होंने लिखे हैं । ये एक अच्छे शृंगारी कवि थे और संयोग शृंगार लिखने की प्रवृत्ति इनमें अधिक थी जिसमें कहीं कहीं ये अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गये हैं ।

✓ ७—देव—देव उत्तर प्रदेश के इटावा स्थान के निवासी थे । इनका जन्मकाल संवत् १७३० निश्चित किया गया है, जिसका आधार इनकी एक पुस्तक 'भाव विलास' है । इस पुस्तक में इन्होंने इस ग्रन्थ की रचना के समय अपनी आयु १६ वर्ष की कही है और ग्रन्थ रचना काल १७४६ दिया गया है । इनके जीवन के विषय में कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता । परन्तु इनकी कई पुस्तकें भिन्नभिन्न-आश्रय दाताओं के नाम पर समर्पित होने से ऐसा कहा जाता है कि कोई अच्छा आश्रयदाता न मिलने से ये एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहे ।

इन्होंने अपना 'अष्ट याम' और 'भाव विलास' औरंगजेब के पुत्र आजम को सुनाया था । इन्होंने अपना 'भवानी विलास' भवानी वैश्य के नाम और 'कुशल विलास' कुशल सिंह के नाम पर लिखा था । 'प्रेम चन्द्रिका' राजा उद्योग सिंह के लिए और 'रस विलास' भोगी लाल के लिए रचे थे । इन्होंने बहुत अधिक पुस्तकों की रचना की । उनकी पुस्तकों की संख्या ५२ या ७२ तक कही जाती है । पर प्रायः ५२ ही है । इनके ग्रन्थों

के विषय में एक बात जानना जरूरी है कि देव जी अपने किसी ग्रन्थ की कविताओं का क्रम बदलकर नये ढंग से नया-ग्रन्थ तैयार कर लेते थे ।

रीति ग्रंथ लिखने के कारण आचार्य तथा अन्य प्रकार की काव्य रचना करने से ये कवि इन दोनों कोटियों में आते हैं । इनमें कवित्व शक्ति और मौलिकता खूब थी । परन्तु अपने विषय का निर्वाह अन्त तक पूरी तरह नहीं कर पाते थे । कहीं-कहीं कविता में अशक्त शब्दों का प्रयोग हुआ है । जिससे कविता और भाषा दोनों का सौंदर्य नष्ट होता प्रतीत होता है । भाषा ब्रजभाषा है । इन्होंने शब्दों के साथ खिलवाड़ और तोड़ मरोड़ काफी की है । यहाँ तक कि वाक्य विन्यास में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है । अपनी बातों को समझाने के लिए इन्होंने दुरारोह कल्पना से भी काम लिया है फिर भी ये रीति काल के प्रतिभा-सम्पन्न कवियों में गिने जाते हैं । 'देव और बिहारी' पुस्तक में कृष्ण बिहारी मिश्र ने इन्हें बिहारी से अधिक अच्छा सिद्ध किया है ।

८—सूरति मिश्र—'सूरति मिश्र कनौजिया, नगर आगरे वास', अपनी इस उक्ति के अनुसार ये आगरे के रहनेवाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । इनका कविता काल अठारवीं शताब्दी का अन्तिम चरण माना जाता है । ये दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के दरबार में आया जाया करते थे । इन्होंने 'बिहारी सतसई' 'कवि प्रिया' तथा 'रसिक प्रिया' की टीकाएँ लिखी हैं । ये टीकाएँ ब्रजभाषा गद्य में हैं । इन्होंने कुल सात ग्रंथ रचे हैं । १. अलंकार माला, २. रस रत्नमाला, ३. सरस रस, ४. रस ग्राहक चन्द्रिका, ५. नख शिख, ६. काव्य सिद्धान्त, ७. रस रत्नाकार ।

‘बिहारी सतसई’ की टीका ‘अमर चन्द्रिका’ के नाम से की गई है ।

६—श्रीपति—ये कालपी के रहनेवाले ब्राह्मण थे । उन्होंने संवत् १७७७ में ‘काव्य संराज’ नामक रीति ग्रंथ लिखा । इनके ६ ग्रंथ और भी मिलते हैं । उल्लेखनीय बात यह है कि इन्होंने अपने ग्रंथों में काव्य दोषों पर भी प्रकाश डाला है । ये आचार्य और कवि दोनों हैं ।

१०—कृष्ण कवि—ये बिहारी के पुत्र थे । बिहारी के आश्रयदाता राजा जयसिंह के मन्त्री की आज्ञा से इन्होंने ‘बिहारी सतसई’ की टीका लिखी है । यह पुस्तक जयसिंह के जीवन-काल में ही बनाई गई । उसमें जयसिंह के लिए वर्तमान काल का प्रयोग है । वह पुस्तक १७८५ और १७९० के बीच में बनी होगी ।

इनकी भाषा सरल है ।

११—अली मुहीब खाँ (प्रीतम)—ये आगरा निवासी थे । प्रीतम इनका उपनाम था । १७८७ में इन्होंने ‘खटमल बाईसी’ नामक एक हास्य रसप्रधान पुस्तक लिखी । इनके पूर्व हास्यरस के आलम्बन संस्कृत साहित्य में विदूषक रहते थे । इन्होंने खटमल को आलम्बन बनाकर एक नया प्रयोग किया है । इनका हास्य शिष्ट-हास्य है ।

१२—दास (भिखारीदास)—ये प्रतापगढ़ के ट्योंगा गाँव के निवासी थे । जाति के कायस्थ थे । इनका कविताकाल १७८५ से १८०७ तक रहा है । ये प्रतापगढ़ के सोमवंशी राजा पृथ्वीपति सिंह के भाई हिन्दूपति सिंह के आश्रय में रहते थे । इस काल का उल्लेख उन्होंने अपनी पुस्तक ‘काव्य निर्णय’ में लिखा है । इसके

अतिरिक्त इन्होंने रस, अलंकार तथा छन्द तीनों पर पुस्तकें लिखीं। इनकी भी गणना आचार्यों में होती है। कुल ६ पुस्तकें इन्होंने लिखी हैं। इन्होंने काव्य के गुण-दोष का भी सम्यक विवेचन किया है। इनका मुख्य विषय शृङ्गार ही है। इनकी ब्रज-भाषा साहित्यिक और परिमार्जित है। ये उच्च कोटि के कवि थे। दास का “काव्यनिर्णय” हिंदी का प्रसिद्ध ग्रंथ है।

१३—**तोषनिधि**—ये शृंगवेरपुर (इलाहाबाद) के निवासी थे। पिता का नाम चतुर्भुज शुक्ल था। इन्होंने संवत् १७६१ में ‘सुधानिधि’ नामक एक ग्रंथ रस भेद और भाव-भेद पर लिखा है। इनकी और दो पुस्तकें ‘विनय शतक’ और ‘नख शिख’ भी मिलती हैं। इनकी कविता में बिहारी के समान अत्युक्ति अधिक है।

१४—**दलपति राम और बंशीधर**—दलपति राम महा-जन और बंशीधर ब्राह्मण थे। दोनों अहमदाबाद के निवासी थे। इन दोनों ने उदयपुर के महाराणा जगतसिंह के नाम पर ‘अलंकार रत्नाकर’ बनाया। इस ग्रंथ का आधार राजा जसवंतसिंह का ‘भाषा भूषण’ है। इस पुस्तक में साथ में व्याख्या भी गद्य में दी गई है। और अलंकारों का उदाहरण देकर घटा कर बताया गया है।

१५—**रसलीन**—इनका नाम सैयद गुलाम नबी बिलग्रामी था। इन्होंने ‘अंग दर्पण’ नामक शृंगार ग्रंथ संवत् १७६४ में लिखा था। इनकी सूक्तियाँ बड़ी सुन्दर व चमत्कारपूर्ण हैं। ‘रस प्रबोध’ नामक एक दूसरा ग्रंथ भी लिखा जिसमें रस का निरूपण किया गया है। इसमें ११५५ दोहे हैं।

१६—**दूलह**—ये उदय नाथ ‘कवीन्द्र’ के पुत्र थे। जिनका

सं० १८०४ में लिखा हुआ प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रस चन्द्रोदय' है। दूलह भी अपने पिता के समान और उनके जीवन काल में ही अच्छी कविता करने लगे थे इनका 'कवि कुल कंठा भरण' नामक एक ग्रंथ प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त कुछ फुटकल कवित्त भी मिलते हैं। यह ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। इसकी विशेषता यह है कि कवित्त और सवैया के समान बड़े परन्तु एक ही छन्द में अलंकार का स्वरूप तथा उदाहरण दोनों लिखे गये हैं। जबकि इनसे पूर्व के रीति ग्रंथों में अलंकार का लक्षण एक दोहे में बता कर उसका उदाहरण दूसरे छन्द कवित्त या सवैया में दिया जाता था। इनकी रचना थोड़ी है पर इनकी गणना प्रतिभासम्पन्न कवियों में की जाती है। रीति काल के मुख्य कवि, देव-दास-मतिराम आदि के साथ ही दूलह का नाम भी लिखा जाता है।

१७—थान कवि—इसका पूरा नाम थान राय था। ये जिला रायबरेली के रहनेवाले थे। इनके मामा चंदन बन्दीजन एक प्रसिद्ध कवि थे। इन्होंने सं० १८५८ में 'दलेल प्रकाश' नामक ग्रन्थ बैस वारा के रईस दलेल सिंह के नाम पर बनाया। इसमें कविता के गुणों का विचार, रस विचार, काव्य के गुण-दोष, कहीं-कहीं अलंकार-विचार और राग-रागिनियों पर भी विचार किया गया है। इसमें चित्र काव्य भी है। इस ग्रन्थ के विषय अनेक हैं। जिससे यह पता चलता है कि बहुज्ञ थे। इनकी भाषा भी बहुत सुन्दर एवं कोमल है। विषयों की विविधता के कारण इनकी बहुत प्रसिद्धि हो गई।

१८—बेनी बन्दीजन—ये जिला रायबरेली के निवासी थे और अवध के वजीर महाराज टिकैत राय के आश्रय में रहते थे। और उन्हीं के नाम पर 'टिकैत राय प्रकाश' नामक अलंकार

ग्रन्थ १८४६ में बनाया । और रस का निरूपण 'रस विलास' में किया । परन्तु इनकी विशेष प्रसिद्धि का कारण भडौवां संग्रह' है । इस ग्रंथ में किसी की हँसी उड़ायी गई है । जो कि हास्य रस की श्रेणी में भी आ सकता है । भडौवां का स्थान हिन्दी में वही है जो अंग्रेजी में Satire का है या उर्दू में 'हजों' का है । इसमें इन्होंने अपने कंजूस आश्रयदाताओं की दी हुई नगण्य वस्तुओं की हँसी उड़ाई है । जैसे रजाई और आम आदि ।

१६—बेनी प्रवीन—ये लखनऊ के रहने वाले थे और वहाँ एक रईस नवल कृष्ण जी के आश्रय में रहते थे । इनकी पहली पुस्तक 'शृंगार-भूषण' है और नवल कृष्ण की आज्ञा से इन्होंने "नव तरंग" नामक ग्रंथ सं० १८७४ में बनाया । ये वाद में विठूर में महाराज नानाराव के पास चले गये थे । और उनके नाम पर 'नाना राव प्रकाश' नामक अलंकार ग्रंथ रचा । ये दोनों ग्रंथ अप्रकाशित हैं । कुछ फुटकल कवित्त भी इनकी प्राप्त होती हैं । 'प्रवीन' इनकी उपाधि थी जिसे इनको 'बेनी' बन्दीजन' ने दी थी । 'नव रस तरंग' में नायिका भेद, रस भेद और भावों पर विचार किया गया है । इनकी भाषा सुन्दर और परिमार्जित है ।

२०—यशोदा नन्दन—इनका जन्म १८२८ में हुआ ऐसा वर्णन 'शिवसिंह सरोज' में मिलता है । अन्य कुछ जीवन वृत्त प्राप्त नहीं होता । इनका एक ही ग्रन्थ 'रविवै नायिका भेद' मिलता है जो कि रहीम के 'बगवै नायिका भेद' से कम नहीं है । इस पुस्तक में नौ बरवा संस्कृत में और ५३ अवधी में हैं । भाषा कोमल कांत सरल और भाव स्वाभाविक हैं । छोटी और एकमात्र रचना होते हुए भी इनका स्थान हिन्दी के उच्च कवियों में है ।

२१—पद्माकर भट्ट—इनके पिता मोहन लाल एक तेलंग ब्राह्मण थे जिनका जन्म बाँदा में हुआ था। उनका सम्मान बहुत राजाओं के यहाँ था। कुछ दिन नागपुर, कुछ दिन पन्ना और कुछ दिन ये जयपुर में रहे। जयपुर नरेश महाराज प्रताप सिंह ने इन्हें 'कविराज शिरोमणि' की उपाधि दी थी। ऐसे पिता के सुपुत्र पद्माकर का जन्म १८१० में बाँदा में हुआ था। और ८० वर्ष की आयु में १८६० में कानपुर में गंगा के किनारे उनकी मृत्यु हुई। पिता के समान ये भी कई स्थानों में रहे। रीति काल के कवियों में बिहारी के बाद ये ही सर्वप्रिय हुए। इनकी कविता रीति काल की रचनाओं में उत्कृष्टतम और अन्तिम है। उन्होंने अवध के बादशाह के सेनाधिकारी गोसाईं अनूपगिरि उपनाम हिम्मत बहादुरसिंह के नाम पर 'हिम्मत बहादुर विरुदावली' की रचना सं० १८४६ में की जो कि वीर 'रस' की पुस्तक है। ये बाद में सतारा के महाराज रघुनाथ राव (राघोबा) के यहाँ गए। वहाँ भी इन्हें काफी सम्मान प्राप्त हुआ और फिर जयपुर महाराज प्रतापसिंह के दरबार में गए और उनके अपने तथा उनके पुत्र जगत सिंह के समय भी वहीं थे। और उन्हीं के नाम पर 'जगन् विरोध' नामक ग्रन्थ रचा। तथा वहीं पर ही 'पद्माभरण' नामक अलंकार ग्रन्थ दोहों में बनाया। ये जयपुर भी गए और वहाँ के राजा भीम सिंह की आज्ञा से 'गनगौर' मेले का वर्णन लिखा है। सं० १८६० में राजा भीम सिंह की मृत्यु के बाद ये ग्वालियर महाराज दौलत राव सिंधिया के दरबार में गये। 'हितोपदेश' का भाषा अनुवाद किया। और फिर बूँदी होते हुए बाँदा अपने घर पहुँच गये। और अपने अन्त काल में भक्ति और वैराग्य से परिपूर्ण ग्रन्थ 'प्रबोध पचासा' नामक ग्रन्थ लिखा। और 'गंगा लहरी'

भी तभी लिखी गयी । उन्होंने बाल्मीकि-रामायण के आधार पर 'राम रमायन' नामक रामचरित काव्य दोहे-चौपाई में लिखा ।

इनका 'जगत विनोद' बहुत ही प्रसिद्ध हैं । इसमें शृङ्गार रस का वर्णन है और कवित्व की छटा दिखाई पड़ती है । इनकी भाषा तुलसी के समान भावनुरूपिणी है । और अनुप्रासप्रियता भी उनमें पाई जाती है ।

२२—ग्वाल कवि—ये मथुरा निवासी सेवा राम बंजीजन के पुत्र थे । ब्रजभाषा के अच्छे कवियों में ग्वाल कवि की गणना होती है । इनका कविता काल स० १८७६ से १९१६ तक है । शृङ्गार रस इनको बड़ा प्रिय था । इन्होंने अपने प्रथम ग्रन्थ 'यमुना लहरी' में भी नव रस और षड्-ऋतुओं के वर्णन के साथ शृङ्गार रस का समावेश किया है । उनके चार रीति-ग्रन्थ मिलते हैं । ५ ग्रन्थ अन्य मिलते हैं जिनमें गोपी, राधा-कृष्ण का वर्णन है । केवल 'हम्मीर हठ' इसका अपवाद है । इनकी अन्तिम पुस्तक 'भक्त भावन' भक्ति रस से परिपूर्ण है जिसे १९१६ में लिखा गया । इसके अतिरिक्त इन्होंने पूर्वी गुजराती और पंजाबी में फुटकल कवित और सवैये लिखे । बहुत सी भाषाओं के ज्ञान का कारण उनका देशाटन है । इनकी भाषा में फारसी और अरबी शब्द भी मिलते हैं ।

२३—प्रताप साहि—ये बुन्देल खंड के महाराज विक्रम साही के दरबार में रहते थे । इनकी प्रसिद्ध पुस्तकें 'व्यंगार्थ कौमुदी' और 'काव्य विलास' है इनके अतिरिक्त इन्होंने नौ और भी पुस्तकें लिखी हैं । कविता काल स० १८८० से १९०० तक है । ये कवि और आचार्य दोनों थे । आचार्यत्व में मतिराम, श्रीपति, दास, और पद्माकर के समकक्ष हैं ।

इनकी भाषा बहुत ही प्रौढ़ और सुव्यवस्थित है उसमें कहीं भी शब्द-शैथिल्य नहीं है। और एक रसता उसमें पाई जाती है।

रीति काल के अन्य कवि

अब तक रीति काल के जिन कवियों का वर्णन हो चुका है। वे लक्षणा ग्रन्थकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। इस स्थान पर उन कवियों का उल्लेख होगा जिनकी रचना तो रीति काल में हुई पर उन्होंने लक्षणा ग्रन्थ नहीं लिखे। ऐसे कवियों को हम यहाँ सात भागों में विभक्त कर सकते हैं।

१. प्रबन्ध ग्रन्थकार, २. शृङ्गारिक कवि, ३. वीरग्रन्थकार, ४. वर्णनात्मक प्रबन्ध कार, ५. नीति पद्यकार (सूक्तिकार), ६. भक्त कवि, ७. अन्य कवि।

प्रबन्ध ग्रन्थकार

१—गुरु गोविन्दसिंह जी—सिक्खों के दसवें गुरु गोविन्द-सिंह जी का जन्म सं० १७२३ में पटना में हुआ था। आपकी रुचि साहित्य में भी बहुत थी। आप एक अच्छे कवि थे। सिक्ख सम्प्रदाय में छात्र-धर्म का प्रारम्भ आप से ही हुआ। आपकी ही आज्ञा से सिक्खों के धर्म ग्रन्थ 'गुरु ग्रन्थ साहब' का संग्रह हुआ है। ये हिन्दू-धर्म और संस्कृति के रक्षक थे, यद्यपि मुसलमानों का आदर ये बराबर करते थे।

आप के प्रसिद्ध साहित्यिक ग्रन्थ निम्न हैं :—१. सुनीति प्रकाश, २. सर्व लोह प्रकाश, ३. प्रेम सुमार्ग ४. बुद्धि सागर और ५. चंडी चरित्र। आपका 'चंडी चरित्र' प्रबन्ध-काव्य है। इसमें

‘दुर्गा सप्तशती’ की कथा दी गई है। भाषा बड़ी ओजस्विनी है। और वह ब्रजभाषा में है साथ ही पंजाबी शब्दों का प्रयोग भी मिलता है।

गुरु जी की मृत्यु सं० १७६५ में नान्देड़ में हुई।

२—लाल कवि—आपका पूरा नाम गोरे लाल पुरोहित था। आप बुन्देलखंड निवासी थे। महाराज छत्रसाल की आज्ञा से आपने उनका जीवन चरित्र चौपाइयों में ‘छत्र प्रकाश’ नामक ग्रन्थ में सविस्तार लिखा है। यह ग्रन्थ अपूर्ण रूप में मिलता है। उसमें छत्रसाल के जीवन का १७६४ सं० तक का वर्णन मिलता है। ऐतिहासिक दृष्टि से पुस्तक महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ में एक अच्छे प्रबन्ध काव्य के गुण हैं। और वर्णन में स्वाभाविकता है।

इस ग्रन्थ में बुन्देल वंश की उत्पत्ति, चंपत राय का विजय-वृत्तान्त, उनका पराक्रम, चम्पतराय के राज्य का मुगलों द्वारा हड़पा जाना और छत्रसाल द्वारा उसका उद्धार, इन बातों का वर्णन बड़ा विस्तृत एवं ऐतिहासिक घटनाओं के अनुरूप है।

इस कवि का लिखा एक अन्य नायिका भेद का ग्रन्थ ‘विष्णु विसाल’ भी मिलता है। परन्तु ‘छत्र प्रकाश’ ने ही उन्हें अमर किया है।

३—सरजू राम—इनका सं० १८०५ में लिखित ‘जैमिनि पुराण भाषा’ नामक एक ग्रन्थ प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ के ३६ अध्याय हैं और दोहे चौपाई तथा अन्य कई छन्दों में यह लिखा गया है। इस ग्रन्थ में बहुत सी कथाएँ हैं। जैसे :—युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ, संक्षिप्त रामायण, सीता त्याग,

लवकुश युद्ध, मयूरध्वज और चन्द्र-हास आदि राजाओं की कथा इसमें मिलती है ।

४—सूदन—ये मथुरा निवासी वसंत जी माथुर चौबे के पुत्र थे । ये भरतपुर के महाराज सुजान सिंह उपनाम सूरजमल के दरबारी थे । सुजान सिंह ने मुगलों पर कई बार आक्रमण किया था और शाही खजाना लूटा था । ऐसे वीर नायक के पराक्रम पूर्ण चरित्र का वर्णन सूदन ने अपने 'सुजान चरित्र' नामक ग्रन्थ में किया है । इसमें १८०२ से १८१० तक की घटनाओं का वर्णन है । और घटनाओं का वर्णन काल्पनिक न होकर वास्तविक है । तथा इतिहास से सम्बद्ध है ।

इस ग्रन्थ में कहीं कहीं वस्तु वर्णन इतना अधिक है कि उससे काव्य में अस्वाभाविकता आ गई है । ऐसा प्रतीत होता है कि कवि कविता नहीं कर रहा अपितु घोड़े, अस्त्र-शस्त्र तथा वस्त्र आदि की सूची तैयार कर रहा है । भाषा के साथ भी सूदन ने पूरी मनमानी की है । इस ग्रन्थ की भाषा में पंजाबी, खड़ी बोली, राजस्थानी, आदि सब भाषाओं के शब्दों को भरा गया है । इस ग्रन्थ के अध्यायों का नाम 'जंग' रखा गया है और सात जंगों में ग्रन्थ पूर्ण हुआ है । इस ग्रन्थ में छन्द भी बहुत से प्रयुक्त हुए हैं ।

५—ब्रजवामी दास—ये बल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी तथा वृन्दावन निवासी थे । उन्होंने सं० १८७७ में 'ब्रज विलास' नामक एक प्रबन्ध काव्य तुलसी के अनुकरण पर दोहे और चौपाई छंदों में बनाया । यहाँ तक कि छन्द क्रम भी तुलसी के 'मानस' का सा है । इस ग्रन्थ में 'सूर सागर' के आधार पर कृष्ण की कथा का जन्म से लेकर मथुरा गमन तक का वर्णन मिलता है । यहाँ

तक कि कई भाव और शब्द सूर से मिल गये हैं। इस ग्रन्थ की भाषा शुद्ध व सरल ब्रज भाषा है।

इस ग्रन्थ के अतिरिक्त उन्होंने 'प्रबन्ध चन्द्रोदय' नाटक का अनुवाद विविध छन्दों में किया।

६—गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेव—गोकुल नाथ और गोपीनाथ ये दोनों एक पिता के पुत्र थे। और मणिदेव भरतपुर राज्य के जहानपुर नामक स्थान के रहनेवाले थे। ये महाशय विमाता के दुर्व्यवहार से रुष्ट होकर काशी चले आये थे। और गोकुलनाथ के साथ ही रहते थे।

काशी नरेश महाराज उदित नारायण सिंह की आज्ञा से इन तीनों ने मिल कर एक 'महाभारत' ग्रंथ लिखा। जिसमें महाभारत और हरिवंश (महाभारत का परिशिष्ट) का अनुवाद विविध छंदों एवं मनोहर भाषा में किया था। इसके लिए काशी नरेश के लाखों रुपये व्यय हुए जो उनके विद्या-प्रेम के उदाहरण हैं। यह ग्रन्थ बहुत बड़ा है लगभग दो हजार पृष्ठों में लिखा गया है। इतना विशालकाय ग्रंथ होते हुए भी इस ग्रंथ में कहीं प्रबन्ध या काव्य की शिथिलता नहीं आई है। भाषा बहुत ही प्रांजल और सुव्यवस्थित है। रूपमाला, घनाक्षरी, सवैया, दोहा तथा चौपाई आदि बहुत से छंदों का प्रयोग किया गया है। परंतु उनका भी प्रयोग उचित रूप से किया गया है, केशव के समान नहीं। इस ग्रंथ में जिस-जिस कवि ने जिस-जिस भाग का अनुवाद किया वहाँ उसका नाम लिया गया है।

इस ग्रंथ के अतिरिक्त गोकुलनाथ के आठ ग्रंथ मिलते हैं। इनके 'राधाकृष्ण विवाह' में रस की सामग्री है और 'कवि मुख

मुंडन' में अलंकार की सामग्री है। महाभारत के अनुवादकों में गोकुलनाथ सर्वश्रेष्ठ हैं।

शृंगारिक कवि

७—आलम—ये पहले ब्राह्मण थे परन्तु बाद में 'शेख' नामक रंगरेजिन के प्रेम में पड़कर मुसलमान बन गये और उससे उन्होंने विवाह कर लिया। आलम, औरंगजेब के पुत्र मुअज्जम, जो कि बाद में बहादुरशाह के नाम से विख्यात हुआ, उसके आश्रय में रहते थे। आलम का कविता-काल १७४० से १७६० तक माना जाता है। उनकी कविताओं का संग्रह "आलम केलि" नाम से प्रकाशित हुआ है। उसके अलावा पद्य अन्यत्र भी मिलते हैं। उनकी पत्नी शेख भी अच्छी कवियित्री थी। 'आलम केलि' में बहुत से कवित्त उसके रचे हुए हैं। इनकी भाषा सुव्यवस्थित है पर कहीं-कहीं अवधी के प्रयोग भी मिलते हैं। इन्होंने उर्दू में भी कविता की है।

८—घन आनन्द—इनका जन्म संवत् १७४६ के लगभग हुआ था। ये जाति के कायस्थ थे और दिल्ली के मुहम्मदशाह के वीर मुंशी थे। इनकी प्रेमिका सुजान नामक वेश्या थी। एक दिन दरबार में कुछ दरबारियों के षड्यन्त्र के कारण वीर मुंशी जी से गाने का आग्रह किया गया। परन्तु वे टालते गये। फिर कुछ दरबारियों के आग्रह पर जब सुजान वेश्या को बुलाया गया तब वे उसकी ओर मुख करके और बादशाह की ओर पीठ करके गाने लगे। यद्यपि राजा उनके गाने से बड़ा प्रसन्न हुआ तथापि उनकी इस असभ्यता से रुष्ट होकर उसने उन्हें शहर से निर्वासित कर दिया। परन्तु जब वे चलने लगे तो उन्होंने अपनी

प्रेमिका सुजान को भी चलने को कहा और वह साथ जाने के लिए सहमत नहीं हुई। बस उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया। और वे वृन्दावन जाकर निम्बर्क सम्प्रदाय के अनुयायी बन गये। और कृष्ण तथा ब्रजभूमि के प्रेम में कविताएँ करने लगे। संवत् १७६६ में जब नादिरशाह की सेना मथुरा पहुँची जो यह समझ कर कि वीर मुंशी के रहने के कारण उनके पास कुछ धन होगा, उन्होंने घनानन्द से रुपया माँगा। बदले में उन्होंने उनके ऊपर रज फेंकी। सैनिकों ने उनके हाथ काट दिए और वे उसी कष्ट में मृत्यु को प्राप्त हुए।

उनके पाँच ग्रंथ मिलते हैं। १. सुजान सागर २. विरह लीला, ३. कोक सार, ४. रसकेलि वल्ली ५. कृपा कांड। इसके अतिरिक्त उनके फुटकल कवित्त और सवैयों के संग्रह १५० से लेकर ४०० तक हैं। छत्रपुर के राज-पुस्तकालय में कृष्ण-सम्बन्धी इनकी कविताओं का एक बहुत बड़ा ग्रंथ प्राप्त होता है। इनकी 'विरह लीला' पुस्तक ब्रजभाषा में है परन्तु उसके छन्द फारसी के हैं।

ये वियोग शृंगार के प्रमुख कवि हैं। इनकी कविता भाव प्रधान है। कहीं-कहीं संयोग शृंगार भी प्राप्त होता है। इनकी भाषा बहुत ही शुद्ध, सरस और सुगठित ब्रजभाषा है। उसमें कहीं भी शिथिलता नहीं है। विशुद्धता के साथ-साथ इनकी भाषा बहुत ही प्रौढ़ और माधुर्य से परिपूर्ण है। ये साक्षान् रसमूर्ति और ब्रजभाषा के प्रधान कवियों में हैं। यह निसंकोच कहा जा सकता है कि ब्रजभाषा पर जैसा अधिकार इनका था वैसा किसी अन्य कवि का नहीं। इन्होंने भाषा में नये प्रयोग किये अर्थात् इनकी भाषा में लाक्षणिक शैली पाई जाती है।

६—चाचा हित वृन्दावन दास—ये पुष्कर निवासी थे।

और संवत् १७६५ में उत्पन्न हुए थे। 'चाचा' के नाम से विख्यात थे। ये कृष्ण गढ़ के महाराज नागरीदास के भाई बहादुर सिंह जी के आश्रय में रहते थे। परन्तु बाद में राजकुल में लड़ाई उत्पन्न होने के बाद वृन्दावन चले गये और वहीं पर उनकी मृत्यु हुई। उनकी १८०० संवत् से १८४४ तक की रचनाओं का पता लगता है। यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने एक लाख पद और छन्द बनाए पर बीस हजार ही प्राप्त होते हैं। इनका विषय 'नखशिख' छद्मलीला, समय प्रबन्ध आदि प्रसंग है। इनका कोई संग्रह प्रकाशित तो नहीं हुआ पर कई ग्रंथों में उनके पद संग्रहीत हैं। छत्रपुर राज्य के राज-पुस्तकालय में इनकी रचनाएँ सुरक्षित हैं।

१०—गुमान मिश्र—ये महोबे के रहनेवाले थे और पिहानी के राजा अकबर अली खॉ के आश्रय में रहते थे। वहाँ इन्होंने संवत् १८०० में श्री हर्ष कृत "नैषध काव्य" का ब्रज-भाषा में पद्य रूप में अनुवाद किया। इस ग्रंथ में अनेक छन्दों का प्रयोग किया गया है पर छन्द बहुत जल्दी-जल्दी बदले गये हैं। संस्कृत के छन्दों का प्रयोग इनकी विशेषता है। 'नैषध काव्य' के अनुवाद के अतिरिक्त इनकी दो पुस्तकें हैं। १. कृष्ण चंद्रिका, और छंदाटवी नामक पिंगल ग्रन्थ मिलता है। इनका कविता काल सं० १८०० से १८४० तक माना जाता है। सुना जाता है कि इन्होंने इन के अतिरिक्त रस, अलंकार और नायिका भेद के भी ग्रंथ लिखे थे।

उनकी भाषा ब्रजभाषा है जिस पर उनका अधिकार था। सरल भावों का अनुवाद सुन्दर बन पड़ा है। पर जटिल भावों का अनुवाद करने में ये असफल रहे हैं। फिर भी ये उत्तम कवि थे।

११—बोधा—ये राजापुर के रहनेवाले ब्राह्मण थे। 'शिवसिंह सरोज' के अनुसार इनका जन्म सं० १८०४ है और कविता काल १८३० से १८६० है। इनके कुछ सम्बन्धी पन्ना में थे। ये बाल्यकाल में ही पन्ना चले गये। इनका पन्ना दरबार में बड़ा मान था। इनका नाम बुद्धिसेन था। पर महाराज इन्हें प्रेम से 'बोधा' कहते थे और वे इसी नाम से प्रख्यात हुए।

ये एक बड़े रसिक जीव थे। इनका एक दरबारी वेश्या सुजान से प्रेम था जिस कारण राजा ने इन्हें ६ मास के लिए निर्वासित कर दिया। सुजान के वियोग में ६ मास इन्होंने बड़े कष्ट से काटे और उसी काल में 'विरह बारीश' नामक पुस्तक लिखी। बाद में उसके कवित्तों को सुनकर राजा ने इन्हें वह वेश्या प्रदान कर दी।

इसके अतिरिक्त 'इश्क नामा' नामक एक और पुस्तक इनकी प्रसिद्ध है। इन्होंने कुछ फुटकल कवित्त और सवैया लिखे हैं। इनकी भाषा में व्याकरण के दोष तो हैं पर भाषा इनकी मुहावरेदार तथा सरल हैं। ये एक भावुक और रसिक कवि थे।

१२—पजनेस—ये पन्ना के रहनेवाले थे। अन्य वृत्तान्त प्राप्त नहीं है। कविता-काल १६०० के लगभग है। 'शिवसिंह सरोज' के अनुसार इन्होंने 'मधुर प्रिया' और 'नखशिख' नामक दो पुस्तकें लिखीं थीं। पर कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं होती। अभी हाल में भारती जीवन प्रेस ने इनके फुटकल १२० कवित्त और सवैया का संग्रह 'पजनेस प्रकाश' नाम से प्रकाशित किया है।

इनकी भाषा ब्रज है पर उसमें कहीं कहीं फारसी के शब्दों का

प्रयोग भी है। विषय उनका शृंगार ही है और उसमें अंगों का वर्णन है। इनकी कविता से पता चलता है कि ये शब्द वैचित्र्य को दिखाना चाहते थे।

वीर ग्रन्थकार

१३—बनवारी—इनका विशेष वृत्तान्त नहीं मिलता। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि ये सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में विद्यमान थे। इन्होंने मारवाड़ के महाराज जसवंतसिंह के बड़े भाई ठाकुर अमरसिंह की वीरता की प्रशंसा में पद्य रचना की है। उनकी इस प्रशंसा का कारण अमरसिंह के जीवन की वह घटना है जब कि अमरसिंह ने शाहजहाँ के भरे दरबार में अपना अपमान करने के कारण शाहजहाँ के साले सलावत खाँ को वहीं मार डाला।

१४—जोधराज—ये गौड़ ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम बालकृष्ण था। तत्कालीन नीवगढ़ (वर्तमान नीम राणा-अलवर) के राजा चन्द्रभान चौहान के अनुरोध से इन्होंने वीर गाथा-काल के अन्तिम राजपूत राजा हम्मीरदेव के वीर चरित्र का वर्णन 'हम्मीर रासो' नामक एक प्रबन्ध काव्य में किया है। इस पुस्तक में वीर गाथा-काल की छप्पय पद्धति को ही अपनाया गया है। इस ग्रन्थ में घटनाओं के वर्णन में कुछ कल्पना से भी काम लिया गया है। इसमें हम्मीर और दिल्ली-पति अलाउद्दीन की लड़ाई का कारण महिमा मंगोल और उसकी प्रेयसी वेश्या का दिल्ली से भागकर हम्मीर की शरण में जाना लिखा है जो कि काल्पनिक है।

इस ग्रन्थ की भाषा ब्रजभाषा तो है ही, परन्तु उसमें राज-

स्थानी भाषा के शब्द भी हैं। साथ ही कहीं कहीं भाषा का स्वरूप प्राचीन मालूम पड़ता है—क्योंकि कवि ने इस ग्रन्थ को प्राचीन रासो परम्परा से मिलाने का प्रयत्न किया है। ग्रन्थ की भाषा भावानुगामिनी है।

१५—चन्द्रशेखर—इनका जन्म संवत् १८५५ में मुअज्जमाबाद (जिला फ़तहपुर) में हुआ था। इनके पिता श्री मनीराम जी वाजपेयी अच्छे कवि थे। चन्द्रशेखर कुछ दिन दरभंगा में, फिर छः वर्ष जोधपुर-नरेश महाराज मानसिंह के यहाँ और अंत में पटियाला नरेश कर्मसिंह के यहाँ रहे। इनकी मृत्यु १९३२ में पटियाला में हुई। इन्होंने प्रसिद्ध वीर-काव्य 'हम्मीर हठ' पटियाला नरेश नेरन्द्र सिंह की प्रेरणा पर बनाया। इसके अतिरिक्त इन्होंने आठ अन्य ग्रन्थ भी लिखे। इन्होंने शृंगार रस से परिपूर्ण ग्रन्थ भी लिखे हैं। पर ये प्रसिद्ध हैं अपने वीर रस ग्रन्थ 'हम्मीर रासो' के कारण ही। इस ग्रन्थ की भाषा बड़ी ओजस्विनी तथा भावानुकूल है। इसमें शब्दों का प्रयोग संयत रूप से किया गया है, और उनके रूप को विकृत भी नहीं किया। तात्पर्य यह कि भाषा पूर्ण व्यवस्थित है। इस ग्रन्थ की घटनाओं का आधार जोधराज का 'हम्मीर रासो' है। और यही आधार बाद में ग्वाल कवि ने अपने 'हम्मीर हठ' में भी लिखा है। एक बात खटकती है कि चन्द्रशेखर के 'हम्मीर हठ' में प्रति नायक अलाउद्दीन को बहुत ही अधिक डरपोक वर्णित किया गया है।

वर्णनात्मक प्रबन्धकार

१६—मंचित—ये मऊ (बुन्देलखण्ड) के रहनेवाले थे और सं० १८३६ में वर्तमान थे। इन्होंने कृष्ण चरित-सम्बन्धी

दो पुस्तकें लिखी हैं । (१) सुरभी दानलीला, (२) कृष्णायन । सुरभी दानलीला में कृष्ण की बाल लीलाओं तथा दान का वर्णन 'सार छंद' में किया गया है । इसके अतिरिक्त इसमें कृष्ण के नखशिख का भी वर्णन है । इन्होंने तुलसी रामायण के अनुकरण पर दोहे चौपाइयों में अपना कृष्णायन लिखा है । इन्होंने ब्रजवासी दास के 'ब्रज विलास' के समान तुलसी की पदावली तक का अनुकरण किया है । इस अनुकरण में वे ब्रजवासी दास से अधिक सफल हुए हैं । इनकी भाषा संस्कृतगर्भित ब्रज है । इनके 'कृष्णायन' की अपेक्षा 'सुरभी दानलीला' अधिक सरस है ।

१७—ललकदास—ये लखनऊ के महन्त थे । सं० १८६० से १८८० तक वर्तमान थे । ऐसा अनुमान किया जाता है । इन्होंने 'सत्योपाख्यान' नामक एक वर्णनात्मक ग्रन्थ लिखा है जिसमें रामचन्द्र जी के जन्म से लेकर विवाह तक की कथा बड़े विस्तार के साथ लिखी गयी है । इस ग्रंथ के लिखने का उद्देश्य राम की जन्म बधाई, बाललीला, होली, जलक्रीड़ा और विवाहोत्सव का वर्णन करना है ।

१८—खुमान—ये बुंदेलखण्ड के चरखारी स्थान के महाराज विक्रमसाहि के यहाँ रहते थे । इन्होंने दस ग्रंथ लिखे परंतु इनका 'लक्ष्मण-शतक' विशेष प्रसिद्ध है । इनके दस ग्रंथों में हनुमान और नरसिंह के चरित्र का भी वर्णन किया गया है । इनका कविता काल सं० १८३० से १८८० तक माना जाता है । इनका उपनाम 'मान' था ।

नीति ग्रंथकार

१९—वृन्द—ये मेड़ता (जोधपुर) के रहनेवाले थे और

कृष्णागढ़ नरेश महाराज राजसिंह के गुरु थे। इनकी 'वृन्द सतसई' बहुत ही अधिक प्रसिद्ध है। इसके "अतिरिक्त शृङ्गार शिखा" और 'भाव पंचाशिका' नामक दो रस ग्रंथ भी मिलते हैं। वृन्द सतसई १७६१ में लिखी गयी। इसमें नीति के ७०० दोहे हैं जिसकी उक्तियाँ बहुत अधिक प्रसिद्ध हैं।

२० — बैताल — 'शिवसिंह सरोज' के अनुसार इनका जन्म काल सं० १७३४ है परन्तु इन्होंने अपनी कुंडलियाँ विक्रमसाहि को सम्बोधित करके लिखी हैं इसलिए इनका समय १८३६ से १८६८ के मध्य मानना पड़ता है। 'गिरिधर' के समान इनकी भी कुंडलियाँ प्रासिद्ध हैं जिनमें नीति की बातें कही गयी हैं। भाषा बहुत ही सरल और बोलचाल की है।

२१ — गिरिधर — इनका कुछ भी वृत्तांत नहीं मिलता। केवल शिवसिंह सरोज के अनुसार इनका जन्मकाल १७७० है। इनकी नीति की कुंडलियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं और बहुत अधिक लोकप्रिय भी हैं। भाषा सर्वसाधारण की समझ में आनेवाली सरल है अतः इनकी कुंडलियाँ अपढ़ लोगों की भी जबान पर हैं। अपनी बात को समझाने के लिए उन्होंने कहीं-कहीं अन्वोक्ति का भी सहारा लिया है।

२२ — बाबा दीनदयालगिरि — ये सं० १८५६ में काशी में उत्पन्न हुए थे। बाल्यावस्था में ही इनके माता-पिता की मृत्यु हो गयी थी। बाद में इनका पालन-पोषण एक महंत 'कुशागिरि' ने किया। महंत की मृत्यु के बाद ये उनके एक मठ "देहली-विनायक" में जाकर रहने लगे। ये उन्हीं महंत के शिष्य बन चुके थे। बाबा दीनदयाल संस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे। इनकी मृत्यु १९१५ में हुई।

इन्होंने पाँच ग्रंथ लिखे (१) विश्वनाथ नवरत्न, (२) दृष्टांत तरंगिणी (१८७६), (३) अनुराग बाग (१८८८) (४) वैराग्य दिनेश (१६०६), (५) अन्योक्ति कल्पद्रुम (१६१२)। इस प्रकार दीनदयाल जी का कविता-काल १८७६ से १६१२ तक माना जाता है। विश्वनाथ नवरत्न में शिव की स्तुति है। दृष्टांत तरङ्गिणी में नीति के दोहे हैं। अनुरागबाग में कृष्ण की लीलाओं का कवित्तों में वर्णन है। वैराग्य दिनेश में ऋतुओं की शोभा का वर्णन है तथा अन्योक्ति कल्पद्रुम में लौकिक विषयों पर अन्योक्तियाँ कही गयी हैं तथा एक दो अन्योक्तियाँ अध्यात्मपक्ष की भी हैं। यद्यपि इनके ये पाँच ग्रंथ मिलते हैं तथापि इनकी विशेष प्रसिद्धि का कारण इनका 'अन्योक्ति कल्पद्रुम' ही है। इन अन्योक्तियों के भाव संस्कृत से भी लिये गये हैं। दीनदयाल जी की भाषा बहुत ही परिष्कृत एवं सुव्यवस्थित है। भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। ये सरल एवं सानुप्रास तथा शब्द वैचित्र्य से पूर्ण दोनों प्रकार की भाषाओं का प्रयोग साधारण कर सकते थे। इनका 'अनुरागबाग' सरल भाषा का ग्रंथ है। इसमें कहीं-कहीं इच्छानुसार सानुप्रास भाषा का भी प्रयोग किया गया है। इनका 'अन्योक्ति-कल्पद्रुम' हिंदी साहित्य का अनमोल रत्न है जो कि कुंडलियाँ छंद में लिखा गया है।

भक्त कवि

२३—भक्तवर नागरीदास जी—इस नाम के बहुत से भक्त कवि ब्रज हुए परन्तु उनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध कृष्णगढ़ के राजा सावंतसिंह जी थे। इनका जन्म १७५६ वि० में हुआ था। ये इतने वीर थे कि १३ वर्ष की अवस्था में इन्होंने बूंदी के शासक

हाड़ा जैतसिंह को मार डाला था । बाद में ये दिल्ली के बादशाह अहमदशाह के दरबार में सं० १८०४ से रहने लगे । जब ये दिल्ली में थे तभी इनके पिता का देहान्त हो गया था और ये वहाँ से अपने राज्य कृष्णागढ़ को लौटे परन्तु जब तक वहाँ पहुँचे इनके छोटे भाई बहादुरसिंह ने जोधपुर के राजा की मदद से गद्दी पर अधिकार कर लिया था । ये ब्रज आये और मरहटों की सहायता से इन्होंने अपना राज्य तो प्राप्त कर लिया परन्तु आपस की गृह-कलह ने उनके हृदय पर कुछ ऐसी चोट पहुँचायी कि वे विरक्त होकर वृंदावन में रहने लगे और वहाँ पर इन्होंने अपना नाम 'सांन्तसिंह' से बदल कर 'नागरीदास' रख लिया । वृंदावन में उन दिनों बल्लभाचार्य की गद्दी की ५वीं पीढ़ी थी ।

नागरीदास को ब्रज से अनन्य प्रेम था । इन्होंने कृष्ण के जीवन की लीलाएँ, ब्रजभूमि की महिमा आदि प्रसंगों पर बहुत से पद लिखे । इनकी लगभग छोटी-बड़ी ७३ पुस्तकें कृष्णागढ़ में संगृहीत हैं, परन्तु अधिकतर वे बहुत ही छोटी-छोटी हैं । किसी-किसी में ५, १० या २५ ही पद हैं । उन्होंने इस प्रकार विभिन्न शीर्षकों से जो पद लिखे हैं यदि उनको एकत्र किया जाय तो पाँच सात अच्छी पुस्तकें बन सकती हैं । उनकी भाषा जनसाधारण की ब्रज-भाषा है जिसमें क्लिष्टता नहीं है और सरसता अधिक है । इन्होंने अपनी पदरचना गीत, कवित्त, सवैया, अरिल्ल, और रोला छन्द में की है । इनकी भावाभिव्यक्ति बड़ी सुन्दर है और शैली में कुछ नवीनता है ।

कुछ अन्य कवि

२४—महाराज विश्वनाथसिंह—ये रीवाँ के राजा थे

और १८७० से १९११ तक इनका शासनकाल रहा। ये भक्त, विद्या प्रेमी और विद्वानों के आश्रयदाता थे। ये स्वयं कविता करते थे। इन्होंने ३२ ग्रंथ लिखे हैं जिनमें भक्तिभावना के ग्रंथ अधिक हैं। ये राम और कृष्ण के भक्त थे पर साथ ही साथ कबीर की “वाणियों” से भी प्रभावित थे। इनकी प्रसिद्धि का सबसे बड़ा कारण इनका “आनन्द रघुनंदन” नाटक है जो कि ब्रजभाषा में लिखा गया है। इसकी विशेषता यह है कि इसके संवाद ब्रजभाषा गद्य में हैं। इस नाटक के पूर्व जो ‘प्रबन्ध चन्द्रोदय’ नामक नाटक महाराज जसवंतसिंह ने लिखा था वह केवल पद्य में था। इन्हीं बातों का विचार करते हुए बाबू हरिश्चन्द्र जी ने इन्हें हिन्दी का प्रथम नाटककार माना है। इनकी भाषा सरल एवं शुद्ध है।

२५ - गिरिधरदास—इनका मुख्य नाम गोपालचन्द्र था और ये गिरिधरदास, गिरिधर या गिरिधारन उपनाम से कविता किया करते थे। ये भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता थे। उन्हीं के अनुसार इन्होंने ४० ग्रन्थ लिखे थे। इनका जन्म सं० १८६० में हुआ था। ये हिन्दी और संस्कृत के विद्वान् थे। ये बड़े विद्याप्रेमी थे। इनके निजी ग्रन्थ संग्रहालय में एक लाख से अधिक कीमत की पुस्तकें थीं। धनी होने पर भी ये विद्वानों का आदर करते थे। इनके यहाँ बराबर विद्वानों और कवियों की मण्डली जमी रहती थी। इनका अधिक समय काव्यचर्चा में व्यतीत होता था। इनकी मृत्यु १९१७ वि० सं० में हुई। यद्यपि भारतेन्दु के अनुसार इनकी ग्रन्थ-संख्या ४० है पर प्राप्त १८ ही है और शेष का केवल नाम मात्र मिलता है। इनकी ग्रंथ-रचना भक्ति मार्ग की तथा कुछ साधारण फुटकल पद्यों की है। अलंकार, छंद और रस पर

भी इनका एक एक ग्रंथ मिलता है। राम कृष्ण तथा पौराणिक कथाओं पर भी आपने ग्रंथ लिखे हैं। इनकी भाषा सानुप्रास और जटिल है। इनकी कविताओं से ऐसा आभास होता है कि इनका झुकाव अलंकार विधान तथा शब्द-चमत्कार की ओर अधिक था।

१४—आधुनिक काल

संवत् १६०० के बाद

रीति काल की समाप्ति के साथ-साथ प्राचीन काव्य परम्परा समाप्त नहीं हुई प्रत्युत वह चलती ही रही, परन्तु उसमें नये-नये भाव आते गये जिसका विस्तृत रूप से अगले पृष्ठों में वर्णन किया जायगा। दूसरी बात यह है कि रीति काल की समाप्ति तक काव्य की भाषा ब्रज ही रही, परन्तु आधुनिक काल में भाषा के विवादास्पद प्रश्नों के सुलझने के बाद खड़ी बोली में भी कविता की जाने लगी और अब मुख्यतः काव्य रचना खड़ी बोली में ही हो रही है मगर इसका तात्पर्य यह नहीं कि अवधी या ब्रज काव्य की भाषा नहीं रही। समय के परिवर्तन चक्र के कारण आज का कवि या लेखक राष्ट्रभाषा हिन्दी में अपने विचार प्रकट करता है।

आधुनिक काल की सबसे अधिक विचारणीय बात है गद्य साहित्य का उत्तरोत्तर विकास और यह विकास खड़ी बोली में ही हुआ। हिन्दी में यद्यपि इस काल के पूर्व भी गद्य ग्रंथ लिखे गये तथापि गद्य का प्रचुर परिमाण में न तो प्रचार ही था और न गद्य में लिखने की ओर अधिक प्रवृत्ति। काव्य ग्रंथ ही उन दिनों अधिक लिखे गये। इसका एक कारण यह भी था कि उन दिनों पुस्तकों का प्राप्त करना बड़ा कठिन था। पुस्तकें छापने के मुद्रणालय भी नहीं थे। पुस्तकें हाथ से भोजपत्र आदि पर लिखी जाती थीं। इन्हीं कारणों से उनकी उपलब्धि साधारण मनुष्य के लिए

कठिन थी। पुस्तकों के इस अभाव के कारण लोग उन दिनों ग्रन्थों को रट लिया करते थे और यह बिल्कुल स्वाभाविक सी बात है कि पद्य का रटना सरल होता है और गद्य का शब्दशः रटना असम्भव होता है। इसीलिए गद्य का प्रचार कम हुआ परंतु अंग्रेजों के भारत में आने के बाद यांत्रिक क्रांति के परिणाम स्वरूप तथा विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के खुलने पर यहाँ के लोग गद्य साहित्य की ओर अधिक आकर्षित हुए। हम अब यहाँ पर आधुनिक-काल को गद्य और पद्य दो भागों में बाँट कर पहिले गद्य के विषय में विचार करेंगे।

प्राचीन गद्य—हिन्दी में कब से गद्य रचना प्रारम्भ हुई यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता इसके लिए हमें गद्य की जो पुस्तकें प्राप्त होती हैं उन्हीं पर निर्भर होना पड़ता है। इस प्रकार प्राचीनतम गद्य का नमूना हमें गोरखनाथ के ग्रंथों में मिलता है। हमारा प्राचीन गद्य ब्रजभाषा में ही मिलता है। गोरखनाथ के योग की शिक्षा देने वाले कुछ गद्य ग्रंथ ब्रजभाषा में ही प्राप्त होते हैं। इनका निर्माण काल संदिग्ध ही है जिसका कारण यह है कि गोरखनाथ का समय ही अनिश्चित है तथापि लोग इन गद्य ग्रन्थों का समय १४०७ के आसपास मानते हैं।

गोरखनाथ के बाद गद्य का दूसरा ग्रंथ वल्लभाचार्य के पुत्र गोसाईं विठ्ठल नाथ ने 'शृङ्गार रस मंडन' लिखा। विठ्ठलनाथ के बाद उनके पुत्र गोसाईं गोकुलनाथ ने 'वन यात्रा, चौरासी वैष्णवों की वार्ता तथा दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' ये तीन ग्रन्थ लिखे। इनका समय १७ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। इन वार्ताओं की भाषा बोलचाल की ब्रजभाषा है।

कुछ विद्वानों का मत है कि ये दोनों ग्रंथ गोकुलनाथ जी के

शिष्यों द्वारा लिखे गये प्रतीत होते हैं क्योंकि इनमें कई स्थानों पर गोकुलनाथ जी का नाम बड़े भक्ति भाव से लिया गया है।

संवत् १६६० में नाभादास ने 'अष्टयाम' नामक ब्रजभाषा में गद्य ग्रन्थ लिखा जिसमें राम की दिनचर्या का वर्णन है।

संवत् १७६७ में सुरतिमिश्र ने संस्कृत से कथा लेकर 'बैताल पच्चीसी' नामक पुस्तक लिखी और १८५२ में हीरालाल ने 'आइने अकबरी की वचनिका' नामक पुस्तक लिखी।

इनके अतिरिक्त कुछ टोका ग्रन्थ लिखे गये परन्तु उनकी भाषा कोई उल्लेखनीय नहीं है। इस प्रकार प्राचीन ब्रजभाषा गद्य का थोड़ा सा आभास मिलता है परन्तु उसका विशेष प्रचार नहीं था।

खड़ी बोली गद्य का विकास—पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत की ओर से आने वाले मुसलमान जब दिल्ली को अपनी राजधानी बना चुके तो उन्हें अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उस प्रदेश के आसपास की भाषा सीखनी पड़ी। उन दिनों दिल्ली और मेरठ के आसपास खड़ी बोली का ही व्यवहार था। इसलिए मुसलमानों ने खड़ी बोली को अपनाया, यद्यपि उनका राजकाज फारसी भाषा में होता था। अन्य सारे कार्य वे इसी खड़ी बोली में करते थे। धीरे-धीरे मुसलमान जैसे-जैसे इस देश में बढ़ते गये वैसे-वैसे उनके साथ-साथ खड़ी बोली का क्षेत्र भी बढ़ता गया। मुसलमानों के आक्रमणों से घबराकर दिल्ली आदि स्थानों की हिन्दू जनता पूर्वी प्रान्तों में पहुँच चुकी थी और अपने साथ खड़ी बोली को लेती गई थी। हिन्दू और मुसलमानों की खड़ी बोली में एक अंतर था और वह यह कि हिन्दूओं की बोली विशुद्ध खड़ी बोली थी जिसमें आवश्यकतानुसार संस्कृत के शब्दों का भी प्रयोग होता

था और मुसलमानों की बोली में अरबी और फारसी के शब्दों का मेल रहता था। यह मिश्रण औरंगजेब के समय से बढ़ता चला गया। मुसलमान इस खड़ी बोली को फारसी लिपि में लिखते थे और बाद में चल कर यही अरबी-फारसीमय खड़ीबोली उर्दू के नाम से प्रकारी जाने लगी।

इस खड़ी बोली के प्राचीन रूप भी हमें ग्रंथों में मिलते हैं। सबसे पहिले इसी खड़ी बोली में हमें १४ वीं शती में 'अमीर खुसरो की कुछ पहेलियाँ आदि मिलती हैं। इसके बाद अकबर के समय में विक्रम को १७वीं शताब्दी में हमें खड़ी बोली गद्य की प्रथम पुस्तक 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' प्राप्त होती है जिसके लेखक गंग थे। इस पुस्तक की भाषा पर ब्रज भाषा का प्रभाव है। गंग के बाद १७६८ संवत् में 'रामप्रसाद निरञ्जनी' ने खड़ी बोली में 'भाषा योगवासिष्ठ' लिखा जिसकी भाषा आजकल की बोली के बहुत समीप है। वि० सं० १८३३ में पं० दौलतराम जो ने 'पद्मपुराण' का भाषानुवाद किया। इसकी भाषा भी फारसी उर्दू से रहित है यद्यपि 'योगवासिष्ठ' सी परिमार्जित नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अंग्रेजों के यहाँ पर राज्य स्थापित कर लेने के समय देश में दो प्रकार की भाषाएँ चल रही थीं। (१) शुद्ध खड़ी बोली और (२) उर्दू यह वह समय था जबकि हमारे साहित्य का रीतिकाल समाप्त हो रहा था।

मुगलों के समय अदालती कार्य और दफ्तरों के काम फारसी भाषा में होते थे। जब यहाँ पर अंगरेजों का आधिपत्य हो गया तब उन्होंने दफ्तरों और अदालतों में फारसी भाषा को ही चलने दिया परन्तु शीघ्र ही सरकार को यह ज्ञात हो गया कि कुछ सरकारी दफ्तरों में काम करने वाले लोगों को छोड़ कर देश की

साधारण जनता फारसी भाषा और लिपि से अनभिज्ञ हैं और जनता को इस कारण बहुत कठिनाई होती है । इस बात को अनुभव करके संवत् १८६० में एक आज्ञा द्वारा यह घोषित किया गया कि प्रत्येक हुकूम नागरी तथा फारसी दोनों भाषाओं में और दोनों लिपियों में निकाला जाय (पृष्ठ ४६८ 'शुक्ल जी का इतिहास' अँगरेजी सन् १८०३, ३१ आईन, २० दफा) इसके बाद संवत् १८६३ में एक और विज्ञप्ति द्वारा अदालती कार्य देश की प्रचलित भाषाओं में करने की आज्ञा हुई और उसी के आधार पर उत्तर प्रदेश में हिन्दी में समस्त कार्य करने की आज्ञा वहाँ की सरकार ने संवत् १८६३ में ही दी, यद्यपि उस बोली को नागरी या फारसी लिपि, किसी में भी लिखने की छूट दी गयी थी परन्तु मुसलमानों के घोर प्रयत्न से फिर सम्वत् १८६४ में उत्तर प्रदेश में दफ्तरों और अदालतों की भाषा उर्दू आनर्जार्य कर दी गयी और इस कारण शिक्षा पाने वाले नवयुवक अपनी आजीविका के लिए उर्दू पढ़ने के लिए बाध्य हो गये ।

अँगरेजों ने यद्यपि अदालत और दफ्तरों के कार्य प्रारम्भ में फारसी फिर उर्दू में चलाये परन्तु वे यहाँ पर अँगरेजी भाषा का भी प्रचार करते गये और नौकरियों में प्राथमिकता उन्हें ही दी जाती थी जो अँगरेजी जानते हों । सम्वत् १८५४ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों के पास भारत वासियों को अँगरेजी माध्यम द्वारा शिक्षित करने का परामर्श भेजा गया था परन्तु उस समय यह प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ फिर भी समय की गति को देख कर राजा राममोहन राय आदि कुछ सज्जनों ने कलकत्ते में हिन्दू कालेज की स्थापना की और वहाँ से अँगरेजी पढ़ कर निकले हुए लोगों को नौकरियाँ शीघ्र मिलने लगीं । फलतः लोग इन स्कूल और कालेजों की ओर आकर्षित होने लगे ।

इसके बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी की ओर से संवत् १८५७ में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की गयी और वहाँ पर भारतीय भाषाओं के पढ़ाने का प्रबन्ध किया गया। उस समय संवत् १८६० में जॉन गिलक्राइस्ट ने जो उर्दू और हिन्दी का अध्यापक था, फोर्ट विलियम में हिन्दी और उर्दू को पढ़ाने की अलग अलग व्यवस्था की और गद्य की पुस्तकें तैयार करवायीं। इस प्रबन्ध से भी यही सिद्ध होता है कि उर्दू से पृथक् हिन्दी का अपना अस्तित्व जनता में था। संवत् १८६० के आस पास हिन्दी के चार गद्य लेखक हुए जिनमें से दो तो स्वतन्त्र रूप से अपने गद्य का स्वरूप रख चुके थे। ये दो महाशय मुंशी सदासुख लाल और इंशाअल्ला खां थे। दूसरे दो लल्लू लाल और सदल मिश्र ने जॉन गिलक्राइस्ट की अनुमति से हिन्दी गद्य की पुस्तकों का निर्माण किया।

(१) मुंशी सदा सुखलाल “नियाज” :—ये दिल्ली के रहने वाले थे और इनका जन्म १८०३ संवत् तथा मृत्यु १८८१ में हुई। ये ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेवा में ‘चुनार’ में अच्छे पद पर थे और १८७५ में इन्होंने कम्पनी की नौकरी छोड़ दी तथा प्रयाग में रहने लगे। इन्होंने श्रीमद् भागवत की कथा को “सुख सागर” के नाम से लिखा। इस ग्रन्थ की भाषा शुद्ध है परन्तु इसमें पंडिताऊपन पाया जाता है। इन्होंने यह ग्रन्थ किसी की प्रेरणा से नहीं लिखा। इस ग्रन्थ की भाषा पूर्वी प्रान्तों में प्रचलित हिन्दी है और उसमें स्थान स्थान पर संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग है। इसी संस्कृत मिश्रित हिन्दी को उर्दू वाले ‘भाखा’ कहते हैं।

(२) इंशाअल्ला खां :— इनके परिवार का मूल निवास

स्थान काश्मीर था परन्तु इनके पिता माशा अल्ला खां दिल्ली में आकर शाही हकीम बन गये थे बाद में वे मुर्शिदाबाद के नवाब के यहाँ रहने लगे और वहीं पर इंशाअल्ला खां का जन्म हुआ। इंशा जब पढ़ लिख कर विद्वान हुए तो वे शाह आलम द्वितीय के दरबार में रहने लगे पर बाद में जब दिल्ली के सम्राट की हालत गिरने लगी तो ये लखनऊ के नवाब सादत अली खां के पास रहने लगे। जीवन के अंतिम दिनों में इनके एक मजाक पर नवाब रुष्ट हो गये और इनका शेष जीवन बड़े कष्ट से गुजरा तथा संवत् १८७५ में इनकी मृत्यु हो गयी।

इन्होंने “रानी केतकी की कहानी” या “उदयभान चरित” संवत् १८५५ और १८६० के बीच लिखा। इनके इस कहानी लिखने कारण सरल भाषा में लिखना था जिसमें “हिन्दीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो। बाहरी बोली और गँवारु भी न हो।” इनके अनुसार बाहर की बोली अर्थात्-अरबी-फारसी न हो और गँवारु अर्थात् ब्रज भाषा न हो और भाखा अर्थात् संस्कृत के शब्द भी न हों यही इसका उद्देश्य था। इनकी भाषा का वाक्य विन्यास तो फारसी का ही था।

(३) - लल्लू लाल—ये आगरा निवासी गुजराती ब्राह्मण थे। इनका जन्म संवत् १८२० और मृत्यु १८८२ में हुई। इन्होंने १८६० में जॉन गिलक्राइस्ट के आदेश से फोर्ट विलियम के लिए “प्रेम सागर” लिखा जिसमें भागवत के दशम स्कन्ध की कथा है। इनकी भाषा में ब्रज भाषा का प्रभाव काफी था। वैसे तो इन्होंने चार और पुस्तकें उर्दू में लिखी हैं जिनके नाम क्रमशः—“सिंहासन बत्तीसी, बैताल पचीसी, शकुन्तला नाटक, माधोनल” हैं। इन्होंने ब्रज भाषा गद्य में राजनीति नाम से हितोपदेश की कहानियाँ भी

लिखी परन्तु उनसे यहाँ कोई प्रयोजन नहीं है। इनका “प्रेम सागर” ही हिन्दी गद्य निर्माण में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। संवत् १८८१ में कालेज की नौकरी से अवकाश प्राप्त करके आगरा जाकर रहने लगे।

४—सदल मिश्र—ये बिहार के रहने वाले थे और फोर्ट-विलियम कालेज में अध्यापक थे। इन्होंने भी जॉनगिल्क्राइस्ट की प्रेरणा से “नासिकेतोपाख्यान” नामक ग्रन्थ लिखा था। इनकी भाषा में पूर्वापन अधिक था।

इस प्रकार उपरोक्त चारों लेखकों ने सं० १८८० में हिन्दी गद्य का सूत्रपात किया इनमें व्यवहारपयोगी भाषा मुंशी सदासुखलाल की हैं और वे ही सबसे पहिले गद्य लेखक माने जाते हैं।

इन चारों के बाद १८८१ में “जटमल” की एक पुस्तक “गोरा बादल री बात” का राजस्थानी पद्य से खड़ी बोली गद्य में अनुवाद किया गया जिसके अनुवादक का नाम अज्ञात है। इसके बाद सं० १९१४ के विद्रोह के बाद गद्य की अग्रगण्य परंपरा चली।

हिन्दी गद्य की परंपरा प्रारंभ तो हो गयी परन्तु उस समय इसका सबसे अधिक उपयोग कुछ धार्मिक संस्थाओं ने अपने सिद्धांतों के प्रचार के लिए किया। ईसाई धर्म प्रचारकों ने इसी जनता की भाषा के माध्यम से १८६० के बाद ही अपने धर्म का प्रचार प्रारंभ कर दिया। उन दिनों श्रीगामपुर ईसाई धर्म का प्रचार केन्द्र था। विलियम केरे तथा अन्य कई पादरियों ने भारतीय भाषाओं में बाइबल का अनुवाद किया। स्वयं केरे ने बाइबल का हिन्दी में अनुवाद किया। इन ईसाई अनुवादकों ने अपनी भाषा में उर्दू मिश्रित भाषा को स्थान न देकर विशुद्ध हिन्दी को ही प्रचार और ग्रंथों की भाषा बनाया। यह बात भी यही

सिद्ध करती है कि उन दिनों जनता की भाषा उर्दू मिश्रित न होकर विशुद्ध संस्कृत मिश्रित थी ।

इसके बाद १६०० से कुछ पूर्व से ही स्कूल, कालेजों के खुलने से शिक्षा सम्बन्धिनी पुस्तकों की आवश्यकता प्रतीत होने लगी थी और उसकी पूर्ति के लिए भी पुस्तकें विशुद्ध हिन्दी में छपने लगी थीं । आगरा की एक ईसाई पादरियों की स्कूल बक्सोसाइटी ने १८६६ में कथासार के नाम से 'इंगलैंड का इतिहास' छपा था । १८६७ में भूगोल और इतिहास की पुस्तकें तथा विज्ञान एवं अन्य भाषा की पुस्तकें वहीं से छपती रहीं । कुछ अन्य ईसाई प्रेस थे जहाँ से ऐसी पुस्तकें छपती थीं ।

ईसाई धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव को देख कर बंगाल में राजा राममोहनराय ने ब्रह्म समाज की नींव डाली और वे उसके द्वारा उपनिषद् और वेदांत के ब्रह्म-ज्ञान का प्रचार करते थे । इन्होंने इस प्रचार के लिए कुछ पुस्तकें छपवाईं । इन पुस्तकों और व्याख्यानो का माध्यम शुद्ध हिंदी था । इन्होंने सं० १८८६ में "बंग दूत" नामक पत्र इसीलिए हिंदी में निकाला था, उसके पूर्व ही कलकत्ते से "उदंत मार्तण्ड" नामक पत्र सं० १८८३ में पं० जुगलकिशोर जी ने हिंदी में निकाला था ।

सं० १८५४ में ईस्ट-इंडिया-कम्पनी के डायरेक्टरों के पास जो परामर्श यहाँ के गवर्नरों द्वारा भेजा गया था वह उस समय तो स्वीकृत नहीं हुआ था परंतु सं० १८६२ में लार्ड मैकाले की कृपा से भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार नियमतः प्रारम्भ हो गया और फलतः अंग्रेजी माध्यम से पढ़ना अनिवार्य हो गया परंतु भाषा के रूप में हिंदी उर्दू दोनों पढ़ायी जाती रहीं । सं० १९०५ की एक विज्ञप्ति द्वारा हिंदी शिक्षा की अनिवार्यता को हटा दिया गया और

उसके लिए यह गया, “देहली के कालेज में पढ़ने वाले मुसलमान विद्यार्थी इस भाषा को अच्छी नजर से नहीं देखते तथा हिंदी दफतरी जवान भी नहीं है” और इस प्रकार हिन्दू-मुसलमानों में फूट के बीज बोये गये। उसी समय अंग्रेजों के कृपापात्र बहुत से मुसलमान हिंदी को शिक्षा विभाग से पूर्ण रूप से हटवा देने का प्रयत्न करने लगे। सं० १६०२ से राजा शिवप्रसाद हिंदी में रुचि लेने लगे थे और इन्होंने उसी सं० में काशी से “बनारस” अखबार निकलवाया जिसकी भाषा तो उर्दू थी परंतु लिपि देवनागरी। प्रारंभ में राजा साहब हिंदी के पृष्ठपोषक रहे और इनकी भाषा शुद्ध हिंदी थी परंतु धीरे-धीरे इनकी भाषा का स्वरूप उर्दूमय होता गया।

सं० १६११ में जब सरकार की ओर से विद्यालयों की सर्वत्र स्थापना करने का एवं पाठ विधि आदि तैयार करने का आयोजन होने लगा तो सरसैयद अहमद खाँ के नेतृत्व में यह प्रयत्न किया गया कि हिंदी को पाठ्यक्रम में रक्खा ही न जाय परंतु राजा शिवप्रसाद के प्रयत्नों से देवनागरी लिपि की मान्यता बनी रही। इस प्रकार हिंदी और उर्दू के झगड़े का सूत्रपात हुआ। हिंदी का क्या स्वरूप हो इस पर हिंदी के ही लोगों में बड़ा मतभेद पैदा हो गया। हिंदी और उर्दू के इस झगड़े को बढ़ाने और हिंदी को समाप्त करवाने के प्रयत्न में इन दिनों पेरिस में बैठे हुए गारसांदासी नामक एक फ्रांसीसी विद्वान ने बहुत योग दिया। हिंदी का स्वरूप शुद्ध हिंदी रहे या हिंदी भाषा उर्दू शब्दों से युक्त होकर प्रचलित हो, यह प्रश्न हिंदी भाषियों में विवाद का विषय बन गया। राजा शिवप्रसाद उर्दू मिश्रित हिंदी के समर्थक थे और राजा लक्ष्मण सिंह विशुद्ध हिंदी के समर्थक और इस प्रकार हिंदी के स्वरूप का प्रश्न भारतेन्दु के समय तक विवादास्पद बना रहा।

सं० १९१३ में जब राजा शिवप्रसाद शिक्षा विभाग में इंस्पेक्टर हुए तब उन्होंने देवनागरी लिपि का शिक्षा के पाठ्यक्रमों में स्थान बचाये रखने का बड़ा प्रयत्न किया यद्यपि भाषा का स्वरूप उर्दू-मय हो गया था। राजा साहब ने उर्दू मिश्रित हिंदी में पुस्तकें तैयार करवायीं और स्वयं भी पुस्तकें लिखीं। प्रारंभ में राजा साहब की भाषा संस्कृत-गर्भित थी जिसका उदाहरण उनकी पुस्तक “मानव धर्म सार” है परंतु सरकार का झुकाव उर्दू की ओर देख कर वे भी सं० १९१७ के बाद उर्दू मिश्रित हिंदी के पक्षपाती हो गये।

भाषा की इस विकृति की ओर राजा लक्ष्मण सिंह का ध्यान गया और वे संस्कृत-मिश्रित हिंदी का समर्थन कहने के लिए उठ खड़े हुए। इन्होंने १९१८ में “प्रजा हितैषी” नामक पत्र निकाला और १९१९ में “अभिज्ञान शाकुन्तल” का अनुवाद विशुद्ध हिंदी में किया। उन्हीं दिनों “फ्रेडरिक पिकाट” ने भी ऐसी ही भाषा का समर्थन किया और हिन्दी में पुस्तकें लिखीं। १९४७ के बाद वे “आईन सौदागरी” पत्र के हिन्दी विभाग के सम्पादक बने और वे उस अखबार द्वारा विशुद्ध हिन्दी भाषा का प्रचार व समर्थन करते रहे।

उन दिनों पंजाब में बाबू नवीनचन्द्रराय शिक्षा विभाग में थे। उन्होंने भी हिन्दी के शुद्ध स्वरूप को बचाने तथा भाषा के प्रचार में बड़ा सहायनीय प्रयत्न किया। उन्होंने भिन्न-भिन्न विषयों की पुस्तकें लिखवायीं तथा सं० १९२४ में “ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका” निकलवायी। वे भाषणों द्वारा भी हिन्दी का समर्थन करते थे। १९२३ में उनके एक व्याख्यान को पढ़ कर गारसांदतासी ने उनका प्रबल विरोध किया और उन्हें साम्प्रदायिक हिन्दू कहा।

उन्हीं दिनों ऋषि दयानन्द ने भी भाषा के स्वरूप को निश्चित करने एवं विकास में बड़ी सहायता पहुँचायी । स्वामी दयानन्द ने देश में जहाँ सामाजिक सुधार का कार्य किया वहाँ राष्ट्रीय भावना को भी जागृत किया । उन्होंने गुजराती मातृभाषा होते हुए भी देश को एकता के सूत्र में बाँधने के निमित्त हिन्दी भाषा को अपने प्रचार का माध्यम बनाया । वे हिन्दी को आर्य भाषा के नाम से पुकारते थे । देशमें जब कि भाषा के स्वरूप पर बड़ा विवाद चल रहा था और अब तक भी चलता जा रहा है उन्होंने भाषा का संस्कृत निष्ठ रूप उसी समय स्वीकृत करके उसका प्रयोग आरम्भ किया । उन्होंने अपना कार्य सं० १९२० से प्रारम्भ किया और सं० १९३२ में बम्बई में सर्वप्रथम आर्य समाज की स्थापना की । आर्य समाज के मंत्र से ऋषि और उनके अनुयायियों ने यद्यपि हिन्दू समाज में सुधार का प्रयत्न किया परन्तु जहाँ-जहाँ आर्य-समाज के अनुयायी पहुँचे वहाँ-वहाँ हिन्दी भाषा पहुँचती गयी । आर्य समाज के आंदोलन से हिन्दी भाषा की जितनी लोक प्रियता बढ़ी उतनी अन्य किसी लेखक की रचनाओं से नहीं । हिन्दी जो कि अब तक उत्तर भारत में ही अधिक विकसित और लोकप्रिय थी वह अब धीरे-धीरे समस्त भारत में पहुँच गयी । दयानन्द की ही प्रेरणा से उनके अनुयायी स्वामी श्रद्धानन्द ने हिन्दी माध्यम से शिक्षा देने वाले सर्व प्रथम विश्वविद्यालय गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना सं० १९५८ में हरिद्वार में की । इसके अतिरिक्त बहुत से विद्यालय और डी० ए० बी० कालिज आदि आर्य-समाज ने खोले । २६ जनवरी १९५० में संविधान द्वारा जिम् हिंदी को राष्ट्रभाषा घोषित किया गया हिन्दी के उसी रूप को आर्य-समाज ने सं० १९३२ से ही अपने प्रचार का माध्यम बना लिया था । दयानन्द ने वेदों का भाष्य हिन्दी में किया और सत्यार्थ

प्रकाश आदि बहुत से ग्रन्थ हिन्दी में लिखे। इन्होंने हिंदी को राज भाषा के रूप में ग्रहण करने की प्रार्थना करते हुए सहस्रों व्यक्तियों के हस्ताक्षर से अंग्रेज अधिकारियों के पास स्मृतिपत्र (मेमोरेण्डम) भिजवाने का प्रयत्न किया था। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने दयानन्द और आर्य समाज को साम्प्रदायिक कह कर उनका नाम मात्र लेकर ही उनकी उपेक्षा की है परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि हिन्दी को फैलाने में और उसके पीछे लोकमत को खड़ा करने में ऋषि और आर्य समाज ने जो कार्य किया है उसी के कारण से हिन्दी को प्रबल गति प्राप्त हुई बाद में “काशी नागरी-प्रचारिणी सभा” आदि हिन्दी की संस्थाओं में कार्य करने वाले प्रमुख व्यक्ति—श्यामसुन्दरदास, रामनारायण मिश्र, प्रतापनारायण मिश्र आदि सब आर्य समाजी ही थे। इन व्यक्तियों ने भाषा के क्षेत्र में चलते हुए द्वन्द्व की परवाह न करने हुए अपने सिद्धान्त के अनुसार हिन्दी का प्रचार किया।

संवत् १९१० के आस पास पंजाब में पं० श्रद्धाराम फुल्लौरी जी ने भी अपने व्याख्यानों द्वारा पंजाब में हिन्दी का बहुत प्रचार किया। इन्होंने, “आत्म चिकित्सा, धर्म रक्षा, उपदेश-संग्रह, शतोपदेश” आदि ग्रन्थ लिखे। इनकी मृत्यु १९३८ वि० सं० में हुई। हिन्दी के प्रचार में सनातनधर्म सभाओं ने भी बहुत योग दिया।

उधर राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द और राजा लक्ष्मण सिंह हिन्दी के स्वरूप पर मत भेद रखते थे। शिव प्रसाद उर्दू मिश्रित हिन्दी के पक्षपाती बन गये थे तथा राजा लक्ष्मण सिंह संस्कृत मिश्रित हिन्दी का समर्थन कर रहे थे भाषा के क्षेत्र में जब यह विवाद चल रहा था और गद्य का कोई निश्चित रूप नहीं था उस

समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी के क्षेत्र में आये। उन्होंने गद्य का ऐसा रूप लोगों के सामने रक्खा जिसमें न सदासुख लाल का पंडिताऊपन था, न लल्लू लाल का ब्रज भाषापन, न सदल मिश्र का पूर्वोपन, न इंशा की उर्दू वाक्य विन्यास शैली, न शिव प्रसाद का उर्दू फारसी के कठिन शब्दों का प्रयोग तथा न लक्ष्मण सिंह की संस्कृत निष्ठ हिन्दी थी। इतने सब 'पनों' से हिन्दी गद्य को छुटकारा दिला कर उन्होंने भाषा का परिमार्जन किया और उसका वह स्वरूप लोगों के सन्मुख रक्खा जो सबको ग्राह्य हो। भारतेन्दु ने गद्य की बहुत सी पुस्तकें लिखीं और अपने मित्रों को भी इस ओर प्रवृत्त किया। उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त कर के—“पं० बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, बद्री नारायण चौधरी प्रेमघन, जग मोहन सिंह” आदि बहुत से लेखक उस समय तैयार हुए जिन्हें भारतेन्दु मण्डल के नाम से शुक्त जी ने लिखा है। हिन्दी गद्य का यह काल संवत् १६०० से १६५० तक रहा जिसे भारतेन्दु काल कहते हैं।

हिन्दी गद्य का द्वितीय काल १६५० से १६७५ तक मानते हैं जिसे द्वितीय युग के नाम से याद किया जाता है। इस काल में हिन्दी में विविध विषयों का समावेश हुआ और नयी नयी शैलियों की सृष्टि हुई। भारतेन्दु ने गद्य का रूप तो निश्चित किया परन्तु उस गद्य में व्याकरण की बहुत सी अशुद्धियाँ रहा करती थीं और बहुवचन एवं स्त्रीलिंग आदि के रूप निश्चित नहीं थे। द्विवेदी जी ने भाषा को व्याकरण सम्मत बनवाने और शुद्ध लिखने का प्रचार करने में बड़ी सहायता की। उन्हीं की प्रेरणा से “काम्ता प्रसाद गुरु” ने हिन्दी व्याकरण लिखा। द्विवेदी जी स्वयं भी अपनी पत्रिका “सरस्वती” द्वारा लेखकों का ध्यान भाषा की शुद्धता की ओर आकर्षित करते थे। इस काल में बहुत से उपन्यास,

नाटक, समालोचना, निबन्ध और कहानियाँ आदि लिखी गयीं । विशेषकर उपन्यास और कहानियों का बहुत ही विकास हुआ । विशेष लेखक—“गिरजा कुमार घोष, देवकी नन्दन खत्री, गोपाल राम गहमरी” आदि माने जाते हैं । खत्री और गहमरी के तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों के कारण बहुत से लोगों ने हिन्दी सीखी । इसी काल में १९५० में श्याम सुन्दर दास, राम नारायण मिश्र, शिव कुमार सिंह इत्यादि सज्जनों के प्रयत्न से “काशी नागरी प्रचारिणी-सभा” की स्थापना हुई । सभा के प्रयत्नों और उसके सहयोगियों के अथक प्रयास से संवत् १९५७ में हिन्दी को उत्तर प्रदेश की अदालतों में स्थान मिला । इस आन्दोलन के प्रधान पं० मदन मोहन मालवीय जी थे । सभा ने बहुत सी पुस्तकें छपवायीं और हिन्दी का बहुत प्रचार किया ।

हिन्दी गद्य का तृतीय उपन्यास १९७५ से अब तक है । इस काल में जयशङ्कर प्रसाद जैसे ऐतिहासिक नाटककार, प्रेमचन्द जी सुदर्शन, विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक, वृंदावनलाल वर्मा, पं० बचन शर्मा उग्र, चतुर सेन शास्त्री, जैनेन्द्र कुमार जैन आदि लेखकों ने कथा, कहानी तथा उपन्यास साहित्य की वृद्धि की । प्रेमचन्द जी तो उपन्यास सम्राट के नाम से विख्यात हुए । आलोचना के क्षेत्र में रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दर दास, पदुम लाल पुन्नलाल बक्शी प्रसिद्ध हैं । अब हिन्दी राष्ट्रभाषा संविधान द्वारा घोषित हो चुकी है और उसमें अब अन्यान्य विषयों की पुस्तकें भी लिखी जा रही हैं और हिन्दी पूर्णतः सर्वाङ्गीण उन्नति करके एक समृद्ध भाषा बन सकेगी । इसमें दर्शन, विज्ञान, इतिहास, भूगोल इत्यादि समस्त विषयों की पुस्तकें उपलब्ध होती जा रही हैं ।

१५—आधुनिक काल का पद्य

गद्य के साथ साथ इस काल में पद्य की भी समुचित उन्नति हुई। हम प्रथम उन कवियों का विवेचन करेंगे जो पुरानी कविता की धारा से सम्बद्ध थे।

ब्रज भाषा पद्य : - भारतेन्दु के समय गद्य में तो खड़ी बोली का प्रारंभ हो चुका था। परन्तु पद्य ब्रजभाषा में ही लिखा जाता था। स्वयं भारतेन्दु भी पद्य रचना ब्रज में ही करते थे। राजा लक्ष्मण सिंह ने अपने 'शकुन्तला नाटक' में पद्य ब्रजभाषा में लिखा है। प्रताप नारायण मिश्र ने भी ब्रज भाषा में कविता की है उनकी समस्या पूर्तियाँ बड़ी प्रसिद्ध हैं। बद्री नारायण चौधरी प्रेमघन भी सफल समस्यापूर्तिकार थे उनकी भाषा भी ब्रज थी। उन्होंने जनता में प्रचलित बहुत से कजली, होली आदि गाने लिखे हैं। "कजली कादम्बिनी" उन्हीं की कजलियों का संग्रह है। ठाकुर जग मोहन सिंह के सवैये अब तक प्रचलित है। उन्होंने मेघदूत का सवैया छंद में अनुवाद किया है। अयोध्या सिंह उपाध्याय (हरि औध) ने भी प्रारंभिक काल में ब्रज भाषा में कविता की थी। श्रीधर पाठक ने "ऋतु संहार" का ब्रज भाषा में अनुवाद किया।

आधुनिक काल के ब्रज भाषा के कवियों में 'बाबूजगन्नाथ प्रसाद रत्नाकर' का स्थान सर्वोच्च है। इन्होंने हरिश्चन्द्र, गंगावतरण और उद्धवशतक नामक तीन प्रबन्ध-काव्य लिखे हैं। इनका उद्धवशतक एक अनमोल ग्रंथ है। 'वियोगी हरि' ने भी

ब्रज भाषा में कविता की है जिनमें प्रेमशतक, प्रेम पथिक, प्रेमाञ्जलि कृष्ण भक्ति की कविताएँ हैं। राजनैतिक आंदोलन से प्रभावित उनकी कुछ रचनाएँ, चखे की गूँज, चर्खा स्तोत्र, अमहयोग वीणा आदि हैं। इन्होंने 'वीर सतसई' नामक एक बड़ा काव्य दोहों में लिखा है जिसमें भारत के प्रसिद्ध वीरों की जीवनियाँ हैं। इस ग्रंथ पर उन्हें १२०० रु० का हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से मंगला प्रसाद पुरस्कार मिला। अयोध्या के पं० राम नाथ ज्योतिषी ने रामकथा को लेकर रामचंद्रोदय काव्य लिखा है जिस पर उन्हें दो हजार रुपये का देव पुरस्कार मिला है। ब्रजभाषा एक जीवित भाषा है और अभी भी इसमें कविता लिखी जा रही है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने "बुद्ध चरित" नामक एक प्रबन्ध काव्य ब्रज भाषा में लिखा था। सत्य नारायण कवि रत्न ने "अमर दूत" नामक काव्य लिखा है परन्तु उसमें राष्ट्रीय भावना का समावेश किया गया है।

“खड़ी बोली पद्य”

आधुनिक हिन्दी कविता का प्रारंभ भारतेन्दु से माना जाता है परन्तु उन लोगों ने प्रारंभ में कविता के लिये ब्रजभाषा को ही उपयुक्त माना था। भारतेन्दु से ही हिन्दी कविता में बहुत से परिवर्तन प्रारंभ हो गये थे। भारतेन्दु के उदय के साथ साथ हिन्दी में बिल्कुल नवीन युग का प्रारंभ हुआ। हिन्दी कविता में इसके पूर्व प्रायः शृंगारिक रचनाएँ हुआ करती थीं परन्तु भारतेन्दु के प्रयत्नों से शृंगारिकता को त्याग कर हिन्दी कविता में देश भक्ति, समाज सुधार, मातृभूमि के उद्धार आदि भावों से परिपूर्ण कविताएँ होने लगीं। पहिले कविता का क्षेत्र संकुचित था पर अब वह विस्तृत होने लगा। कविता में यह परिवर्तन परि-

स्थितियों के साथ साथ होता गया । अब तक रचनाएँ या तो मुक्तक होती थीं या प्रबन्धात्मक कविता के वर्णन का विषय परमात्मा या कोई धीरोदात्त नायक अथवा शृंगारिक वर्णन होता था परन्तु अब विषयों में भी परिवर्तन हुआ । कविता के विषय गो रक्षा, बुढ़ापा, जन्मभूमि देशप्रेम आदि होने लगे । इतने परिवर्तन होने पर भी भारतेन्दु तथा भारतेन्दु-मण्डल की भाषा ब्रजभाषा ही थी । कहीं कहीं भारतेन्दु और प्रतापनारायण मिश्र ने खड़ी बोली में पद्य रचना की है ।

भारतेन्दु युग के बाद खड़ी बोली में पद्य का विकास अधिक हुआ । द्विवेदी जी ने जब भाषा की शुद्धता का आंदोलन चलाया तो उन्होंने शुद्ध खड़ी बोली में कविता करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया । भारतेन्दु काल में यह समझा जाता था कि खड़ी बोली में कविता हो ही नहीं सकती क्योंकि यह भाषा कठोर शब्दों से परिपूर्ण है परन्तु द्विवेदीयुग के कवियों ने इस भ्रान्त धारणा को निमूल सिद्ध कर दिया । भाषा में कोमलता लाने के लिए संस्कृत के शब्दों का प्रयोग अधिक होने लगा । संस्कृत के छंदों का भी इस काल में प्रयोग हुआ । खड़ी बोली में कविता करने वालों में श्रीधर पाठक प्रथम माने जाते हैं । उसी समय राय देवीप्रसाद पूर्ण तथा नाथूराम शंकर शर्मा “शंकर” ने खड़ी बोली में पद्य रचना प्रारंभ कर दी थी । श्रीधर पाठक से ही हिन्दी में स्वच्छन्दतावाद का प्रारंभ माना जाता है और इस प्रकार प्राकृतिक वर्णनमय कविताएँ भी उन्हीं से प्रारंभ हुईं ।

श्रीधर पाठक के बाद अयोध्या सिंह उपाध्याय, मैथिली शरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सियारामशरण गुप्त, रूपनारायण पांडे इत्यादि इस युग के खड़ी बोली के प्रसिद्ध कवि हैं ।

द्विवेदीयुग में स्वच्छन्दतावाद का विकास हो रहा था इसी

बीच रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि का समस्त संसार में बड़ा मान हुआ। उसमें प्रेरणा लेकर हिन्दी के कविगण रहस्यवाद और छायावाद की ओर आकर्षित हुए। प्रकृति की दृश्यमान सीमाओं को पार करके उसमें दृश्यमान इतिवृत्तात्मक भौतिकता की अपेक्षा एक अलौकिक अगोचर भावुकता के दर्शन करने की प्रवृत्ति को “छायावाद” कहा जाता है। अर्थात् इस व्यक्त जगत के परे जो एक अदृश्य शक्ति है उस तक पहुँचने की प्रवृत्ति छायावाद में है। रवीन्द्र के प्रभाव से ही हिन्दी में छायावाद के साथ साथ प्रगीत मुक्तकों का प्रारंभ हुआ और प्रतीकों के द्वारा भावभिव्यक्ति प्रारंभ हुई। मुख्य कवि “जय शंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा आदि हैं।

आधुनिक काव्य की नई प्रवृत्ति प्रगतिवाद (मानवतावाद) के नाम से प्रसिद्ध है जिस पर साम्यवाद का प्रभाव है। अब काव्य के विषय मजदूर, किसान, भूखे नंगे और शोषित हो गये हैं। कविता में पूँजीपतियों को कोसना, मजदूरों का पक्ष लेना और पूँजीपति तथा सरकार को गाली देना एक पैशन हो गया है। यद्यपि बहुत से लिखने वाले स्वयं गरीबों किसानों और मजदूरों से बहुत दूर हैं। काव्य में अब “मुक्त छंद” का भी प्रयोग हो रहा है। मुख्य कवि निराला, पंत, दिनकर, शिवमंगलसिंह सुमन, उपेन्द्रनाथ अशक, भवानीप्रसादमिश्र, अज्ञेय आदि हैं।

एक और नयावाद प्रयोगवाद के नाम से चल पड़ा है जिसके प्रवर्तक सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय हैं। इसमें काव्य की सब प्राचीन रुढ़ियों को तोड़ दिया गया है।

हरिवंशराय बच्चन ने बीच में हालावाद चलाया था वे शराब शराबखाना, साकी और प्याले में आध्यात्मिकता का रंग देखते हैं। इन्होंने इस भाव से पूर्ण मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश,

निशानिमंत्रण, एकांत संगीत नामक रचनाएँ की हैं। इन पर उमर खैयाम का प्रभाव है।

इसी बीच बहुत से ऐसे कवि भी हो गये हैं जो इनवादों के अंतर्गत नहीं आते फिर भी श्रेष्ठ कवियों में उनका स्थान है। सुभद्रा कुमारी चौहान ऐसी ही एक कवयित्री हैं जिन पर राष्ट्रीयता का प्रभाव है। इन्होंने वात्सल्य रस की कविताएँ भी की हैं।

भगवती चरणवर्मा दुःखवाद से प्रभावित कवि हैं। इनके मधु कण, प्रेम संगीत, नूरजहाँ की कब्र पर, मानव आदि कविता संग्रह निकल चुके हैं। डा० रामकुमार वर्मा पर भी दुःखवाद का प्रभाव है। इनके अंजलि, अभिशाप, निर्णय, रूपराशि, चित्ररेखा आदि संग्रह निकल चुके हैं। इनकी रचनाओं में निराशा की झलक है। इसी प्रकार सोहन लाल द्विवेदी राष्ट्रीय कवि हैं। इन पर गांधीवाद का प्रभाव है। श्रीमती विद्यावती कोकिल पर उपनिषद् साहित्य का प्रभाव है और वे बहुत सुंदर गीत लिखती हैं। इनके भी कुछ संग्रह निकल चुके हैं।

१६ -- आधुनिक-काल के गद्य और पद्य लेखक

- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र:—इनका जन्म काशी के एक सम्पन्न वैश्य कुल में संवत् ११०७ में हुआ था और मृत्यु ३५ वर्ष की अवस्था में संवत् ११४२ में हुई। तेरह, चौदह वर्ष की अवस्था में ये अपने परिवार के साथ जगन्नाथपुरी गये थे वहां इनका बंगाली साहित्य से परिचय हुआ। इन्होंने बंगला के नये ढंग के सामाजिक ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक, उपन्यास आदि देखे और हिन्दी में ऐसी पुस्तकों का अभाव अनुभव किया। भारतेन्दु के पूर्व गद्य के रूप के लिये हिन्दी और उर्दू का विवाद चल रहा था। इन्होंने ऐसे समय में साहित्य के क्षेत्र से इस विवाद को दूर किया और भाषा को संस्कृत की क्लृप्ता तथा उर्दू के फारसीपन से दूर करके प्रचलित शब्दों को जोड़ते हुए भाषा के स्वरूप को स्थिर किया।

गद्य रचना के अंतर्गत भारतेन्दु का ध्यान सबसे पहिले नाटकों की ओर गया। उनका पहिला नाटक “विद्या सुन्दर” बंगला से अनूदित है। इनके पूर्व हिन्दी में केवल दो नाटक ही लिखे गये थे (१) रीवांनरेश विश्वनाथसिंह का ‘आनंद रघुनंदन’ नाटक और (२) गोपालचंद्र का ‘नहुष’ नाटक। परन्तु भारतेन्दु ने आठ मौलिक नाटक लिखे हैं (१) विषम्य विषमौषधम्, (२) वैदिकीहिंसा हिंसा न भवति, (३) चंद्रावली (४) भारत दुर्दशा, (५) नीलदेवी, (६) अंधेर नगरी, (७) प्रेम जोगिनी, (८) सती प्रताप। इनके सात नाटक अनूदित हैं : विद्या सुन्दर, पाखण्ड विडम्बनध नंजय

विजय, भारत जननी, सत्य हरिश्चन्द्र, मुद्राराक्षस, कर्पूर मंजरी ।

इन्होंने अपने मौलिक नाटकों में उस समय के जीवन का सामञ्जस्य स्थापित किया है। चंद्रावली में प्रेम का आदर्श, नीलदेवी में मुसलमानों की चढ़ाई का वृत्तांत, भारत दुर्दशा में देश की दुर्दशा का वर्णन और विषस्य विषमौषधम् में राजाओं के कुचक्र का वर्णन है। प्रेम जोगिनी में धार्मिक तथा सामाजिक पाखण्ड की पोल खोली गयी है।

काश्मीर कुसुम और बादशाह दर्पण उनकी ऐतिहासिक पुस्तकें हैं और जयदेव का जीवन वृत्त लिखकर इन्होंने जीवनियां लिखने की प्रवृत्ति भी उत्पन्न की। इन्होंने एक बंगाली उपन्यास का अनुवाद भी प्रारंभ किया था पर वह अधूरा रह गया। कहने का तात्पर्य यह है कि इन्होंने साहित्य के विविध अंगों का प्रारंभ और परिपोषण किया।

भरतेन्दु के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता देश भक्ति की भावना तथा समाज सुधार की उत्कट इच्छा है। वे प्राचीन संस्कृति के पुजारी थे तथा उसके साथ साथ नवीन विचारधारा एवं सुधारों के साथ समन्वय स्थापित करना चाहते थे। इन्होंने अपने साहित्य में समाज की प्रचलित कुरीतियों की निंदा की है और साथ-ही अंग्रेजी संस्कृति के कुप्रभाव की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया है। इन्होंने बाल विवाह का विरोध और स्त्री शिक्षा पर जोर दिया है। इस प्रकार इन्होंने प्राचीन और नवीन दोनों की अच्छाइयों का समन्वय स्थापित किया है।

इन्होंने कई प्रत्र पत्रिकाएं भी निकाली जिनमें वे स्वयं लिखते थे और अन्य लोगों को लिखने के लिए प्रोत्साहित करते थे !

इन्होंने १९२५ में “कवि वचन सुधा” नामक पत्रिका निकाली और १९३० में “हरिश्चन्द्र मैगजीन” निकाली जो बाद में हरिश्चन्द्र पत्रिका के नाम से प्रसिद्ध हो गयी। अपने स्त्रियों के लिए “बाला बोधिनी” पत्रिका भी निकाली।

हिन्दी कविता के क्षेत्र में भी हम भारतेन्दु से ही आधुनिक युग को प्रारंभ करते हैं। उनके काव्य में नई भावनाओं को पाया जाता है। अब तक वीर पुरुष, भगवान् और स्त्रियों के अंगों का वर्णन ही काव्य का विषय था परन्तु अब काव्य में देश प्रेम की भावना और सामाजिक समस्याओं को सुलभाने की भावना प्रारंभ हुई। परन्तु अभी भी काव्य की भाषा ब्रजभाषा ही थी। भारतेन्दु और उनके साथी गद्य तो खड़ी बोली में लिखते थे परन्तु उनका यह विचार था कि कविता ब्रजभाषा में ही लिखी जा सकती है।

भारतेन्दु में कविता लिखने की प्रतिभा विलक्षण थी। उनके काव्य को हम चार विभागों में बाँट सकते हैं—व्यक्ति प्रधान, शृङ्गार प्रधान, देश भक्ति की भावना से परिपूर्ण और सामाजिक समस्यायुक्त। ये कृष्ण भक्त कवि थे और इन्होंने कृष्ण की भक्ति में जो पद लिखे हैं उनमें अपने उद्धार के साथ साथ देश के उद्धार की भी प्रार्थना की गयी है। इन्होंने अपने नाटकों में विशेषकर नीलदेवी और भारत दुर्दशा में जो गीत लिखे हैं उनमें देश की दुर्दशा का वर्णन करके देश के उद्धार की कामना विचार व्यक्त के किये गए हैं। भारतेन्दु ने कुछ प्रकृति चित्रण का भी प्रयत्न किया है हम उनके इन चित्रणों को स्वच्छन्दतावाद का प्रारंभ मान सकते हैं परन्तु उनके प्रकृति चित्रण सीमित हैं और उनमें अलंकारों इत्यादि के निर्वाह का अधिक प्रयत्न पाया जाता है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि भारतेन्दु की कविता में भक्ति काल और

रीति काल की श्रृंगारिक भावनाओं के साथ नये युग की देश भक्ति और समाज सुधार की भावनाओं का समन्वय पाया जाता है। इन्होंने कजली और लावनियां भी लिखी हैं।

भारतेन्दु मण्डल के लेखक

बाल कृष्ण भट्ट—(सं० १६०१ से १६७१) इनका जन्म प्रयाग में सं० १६०१ में हुआ। इनका प्रारम्भिक शिक्षण संस्कृत से हुआ फिर ये मिशन स्कूल अङ्गरेजी पढ़ने के लिए भेजे गये। वहाँ पर एक पादरी से वाद-विवाद होने पर इन्होंने स्कूल छोड़ दिया। कुछ दिन इन्होंने अध्यापन का कार्य किया और फिर साहित्य की सेवा करने लगे। इनकी भाषा में बोल चाल के शब्दों और मुहावरों का विशेष प्रयोग पाया जाता है। इन्होंने १६३१ में 'हिन्दी प्रदीप' नामक अखबार प्रयाग से निकाला। यह पत्र ३२ वर्ष चला। भट्ट जी के निबन्ध बहुत प्रसिद्ध हैं और उनमें विद्वत्ता का दर्शन होता है। ये अपने समय के सर्वोत्तम निबन्धकार थे। आवश्यकतानुसार इनकी भाषा में उर्दू के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग पाया जाता है। इनके "आँसू, चन्दोदय, बाल्यकाल, ईश्वर क्या ही ठठोल है, नाक निगोड़ी भी बुरी बला है आदि लेख हिंदी साहित्य की स्थायी निधि हैं। इनके लेखों में हास्य का पुट मिला रहता है। इनकी मृत्यु १६७१ में हुई।

प्रताप नारायण मिश्र—(सं० १६१३ से १६५१) इनका जन्म उन्नाव में १६१३ में हुआ और ये प्रायः कानपुर में रहते थे। व्यंग्य और विनोद से भरी गद्य लेखन की इनकी अपनी एक विशेष शैली है। इनकी भाषा में कहावतों, लोकोक्तियों के साथ विनोद और व्यंग्य अद्वितीय है। ये 'ब्राह्मण' नामक अखबार के

सम्पादक थे। इन्होंने बहुत सुन्दर मौलिक निबन्ध लिखे हैं। इनमें भी राष्ट्रीयता और समाज सुधार की भावना विद्यमान थी।

इन्होंने बहुत से नाटक लिखे जिनमें प्रसिद्ध “भारत दुर्दशा, हठी हमीर, गोसंकट, कलि प्रभाव” हैं और ‘शकुन्तला’ नाटक का अनुवाद इन्होंने खड़ी बोली पद्य में किया है। इन्होंने कविता ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में की है जिनमें भक्ति के साथ साथ देश-प्रेम की भावना पायी जाती है।

बद्री नरायण चौधरी ‘प्रमधन’—(संवत् १९१२ से १९७६) ये मिर्जापुर के निवासी थे। इनकी भाषा संस्कृत, शब्दों से युक्त रहती थी और बोलचाल के शब्दों का प्रयोग उसमें कम रहता था। ये एक शिल्पकार के सामान भाषा को गढ़ा करते थे इनमें अनुप्रास प्रियता अधिक पायी जाती है। ये नाटककार, लेखक, कवि और समालोचक थे। इन्होंने आनन्द कादम्बिनी, नामक एक साहित्यिक पत्रिका का संपादन मिर्जापुर से किया और इस पत्रिका में इन्होंने बाबू गजाधरसिंह की ‘बंग विजेता’ और लाला श्री निवासदास की ‘संयोगिता स्वयंवर’ की समालोचना लिखकर हिन्दी में समालोचना का सूत्रपात किया। इन्होंने बहुत से नाटक भी लिखे थे जिनमें से एक संवत् १९४५ (सन् १८८८) के कांग्रेस अधिवेशन में खेला गया था, जिसका नाम भारत सौभाग्य था। विनोद पूर्ण प्रहसन भी इन्होंने लिखे। इन्होंने देश प्रेम से युक्त कविताएं लिखी हैं। प्रेमघन के नाम से ये कविता किया करते थे। इनकी कविताओं का संग्रह ‘प्रेमघन सर्वस्व के नाम से छप चुका है।

बाल मुकुन्द गुप्त—(संवत् १९२२ से १९६४)

आपका साहित्य में प्रवेश भारतेन्दु के बाद ही हुआ परन्तु इनकी रचनाओं में उस युग की सजीवता और देश प्रेम की भावना पायी जाती है । ये बड़ी शिष्टता के साथ गहरी चुटकियां लिया करते थे आपने 'बंग वासी' और 'भारतमित्र' अखबारों द्वारा हिन्दी की बहुत सेवा की । इनकी भाषा में प्रवाह पाया जाता है । तत्कालीन राजनैतिक दशाओं पर भी इन्होंने व्यंग्यात्मक लेख लिखे हैं । इनके लिखे हुए "शिव शम्भू के चित्रे" हिन्दी साहित्य में सदा स्मरणीय रहेंगे ।

लाला श्रीनिवासदास—(१६०८ से १६४४) ये दिल्ली के रहने वाले थे । भारतेन्दु के समकालीन लेखकों में इनका विशेष स्थान था । इन्होंने "प्रह्लाद चरित्र और तप्ता संवरण" नामक नाटक लिखे थे तथा १६३४ में इन्होंने अंगरेजी के नाटक "रोमियो जूलियट" के समान एक नाटक 'रणाधीर और प्रेम मोहिनी' लिखा । यह एक दुखान्त नाटक है । इस पर अंगरेजी नाटकों का प्रभाव स्पष्ट है । इसमें प्रस्तावना नहीं है और अंगरेजी नाटकों के समान इसके द्वारा, हिन्दी में दुखान्त नाटकों का प्रारम्भ हुआ । इसके पूर्व हिन्दी में दुखान्त नाटक नहीं लिखे जाते थे । इसके बाद 'संयोगिता स्वयंवर' नाटक लिखा गया जिसमें पृथ्वीराज द्वारा संयोगिता हरण का उल्लेख मिलता है । श्रीनिवासदास ने 'परीक्षा गुरु' नामक एक शिक्षा प्रद उपन्यास लिखा जो हिन्दी का पहिला उपन्यास है । ये एक प्रतिभाशाली लेखक थे । इनकी भाषा संयत और शिष्ट थी ।

पंडित राधाचरण गोस्वामी—(सं० १६१५ से १६८२) इनका जन्म बृन्दावन में हुआ । ये संस्कृत के अच्छे विद्वान थे । देशभक्ति और समाजसुधार की भावनाएँ इनमें बहुत थीं । इन्होंने

भारतेन्दु नामक एक पत्र निकाला था। समाज-सुधार के सम्बंध में इन्होंने बहुत से लेख भी लिखे थे। इन्होंने 'सुदामा नाटक, सती चन्द्रावली और अमरसिंह राठौर' आदि नाटक लिखे हैं और बंगाली के तीन उपन्यासों 'विरजा, जावित्री, और मृगमयी' का हिन्दी में अनुवाद किया।

राधाकृष्णदास—(सं० १६२२ से १६६४) ये भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'सतीप्रताप' नामक नाटक को अधूरा छोड़ गये थे जिसे इन्होंने पूरा किया। इन्होंने 'दुःखिनी बाला' नामक एक नाटक लिखा जिसमें समाज की कुरीतियों और उसके दुष्परिणामों को दिखलाया गया है और और इसमें जन्म पत्री मिलान, बाल विवाह तथा अन्य कुरीतियों को दूर करने की प्रेरणा दी गयी है। 'महागानी पद्मावती' नामक नाटक इन्होंने चित्तौड़ पर अलाउद्दीन की चढ़ाई की घटना को लेकर लिखा है। इनका सबसे उत्कृष्ट नाटक "महाराणा प्रताप" १६५४ सं० में पूरा हुआ। इन्होंने एक उपन्यास 'निःसहाय हिन्दू' लिखा और बंगाली के दो उपन्यासों का—"स्वर्णलता, मरता क्या न करता" का हिंदी में अनुवाद किया।

✓ **महावीर प्रसाद द्विवेदी**—(सं० १६२७ से १६६५)—
इनका जन्म दौलतपुर जिला रायबरेली में सं० १६२७ में हुआ और १६६५ में इनकी मृत्यु हुई। इनके पिता फौज में नौकर थे अतः इनकी शिक्षा की उचित व्यवस्था न हो सकी। प्रारम्भ में घर पर संस्कृत सीखी फिर अँग्रेजी पढ़ने के लिए रायबरेली भेजे गये। इसके बाद फतहपुर, उन्नाव आदि कई स्थानों में पढ़ने गये पर शिक्षा अधूरी रही। बाद में इन्होंने १५) मासिक पर नौकरी कर ली और बम्बई चले गये। वहाँ पर तार का काम सीखा और २२)

मासिक पर जी० आर्दे० पी० रेलवे में तार बाबू बन गये । इस प्रकार उन्नति करते-करते १५०) मासिक पर चीफ क्लर्क बन गये । एक दिन रेलवे उच्चाधिकारी से कुछ कहा सुनी होने पर इन्होंने नौकरी छोड़ दी और १६६० में 'सरस्वती' का सम्पादन अपने हाथ में ले लिया ।

बम्बई में रहते हुए इन्होंने मराठी, गुजराती और बंगला भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया और उन भाषाओं के साहित्य से प्रेरणा प्राप्त की । नौकरी छोड़ने के बाद जब सरस्वती का सम्पादन इन्होंने अपने हाथ में लिया तब हिंदी के लेखक भाषा में व्याकरण के नियमों का विशेष ध्यान नहीं रखते थे और मनमाने व्याकरण के प्रयोग करते थे । द्विवेदी जी ने सरस्वती के द्वारा लेखकों को व्याकरण सम्मत शुद्ध भाषा लिखने की प्रेरणा दी । इस प्रकार वे हिंदी भाषा के शिल्पी थे । इन्होंने ही श्री कामता प्रसाद गुरु से हिंदी का व्याकरण लिखवाया । उनके समय तक साहित्य में केवल उपन्यास, कहानियाँ, नाटक और सामाजिक लेख ही लिखे जाते थे । इनकी प्रेरणा से इतिहास, पुरातत्व विज्ञान, सम्पत्तिशास्त्र, शासन-पद्धति, दर्शन शास्त्र पर तथा अन्य अनुसंधानात्मक और आलोचनात्मक निबंध लिखे जाने लगे । द्विवेदी जी ने स्वयं भी लिखा और अन्य बहुत से लेखकों को इन्होंने बनाया । ये सरल और प्रचलित भाषा का प्रयोग करते थे परंतु भाषा शुद्ध संस्कृतमयी रहती थी । लिखने की सफलता ये इसमें समझते थे कि कठिन से कठिन विषय इनने सरल रूप में रख दिये जाँय कि साधारण पाठक भी समझ सकें । द्विवेदी जी ने कई सुंदर निबंध लिखे जिनमें 'कवि और कविता, प्रतिभा, साहित्य की महत्ता' विशेष प्रसिद्ध हैं । उनके निबंध विचारात्मक होते थे और व्यासशैली के अनुसार लिखे जाते थे ।

द्विवेदी जी की ही प्रेरणा से हिंदी में खड़ी बोली में कविता की जाने लगी। भारतेन्दु युग में यह समझा जाता था कि कविता ब्रजभाषा में ही हो सकती है। श्रीधर पाठक ने खड़ी बोली में कविता लिखनी प्रारम्भ कर दी थी परंतु द्विवेदी जी ने सरस्वती पत्रिका द्वारा खड़ी बोली में कविता करने का प्रोत्साहन कवियों को दिया। उस समय लोगों-ने ब्रजभाषा के छंदों को न लेकर अन्य छंदों का प्रयोग प्रारम्भ किया अर्थात् लोकगीतों के लावनी इत्यादि छंदों तथा संस्कृत के छंदों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। द्विवेदी जी ने संस्कृत के छंदों को अपने काव्य में स्थान दिया और इस प्रकार अतुकांत कविता का प्रारंभ हुआ। द्विवेदी जी की कविता में संस्कृत के तत्सम शब्दों तथा समासों का बहुत प्रयोग होता था इसलिए उनकी कविता उतनी सरल नहीं है। द्विवेदी जी की इस संस्कृत शैली का मफल प्रयोग “अयोध्यासिंह उपाध्याय” ने अपने ‘प्रिय प्रवास’ में किया। द्विवेदी जी का महत्व उनके कवि होने में उतना नहीं है जितना कवि निर्माता होने से मैथिली शरण जी गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय आदि कवियों ने उनका ऋण स्वीकार किया है।

श्रीधर पाठक (सन् १८१६ से १८८५) उनका जन्म आगरा जिले के एक ग्राम जोधरी में १८१६ वि में हुआ। ये सारस्वत ब्राह्मण थे। एंटेंस (मैट्रिक) की परीक्षा पास करने के बाद इन्होंने सरकारी नौकरी की और उन्नति करते करते संयुक्त प्रांत की सरकार के दफ्तर के सुपरिन्टेण्डेन्ट हो गये। पेंशन के बाद प्रयाग में रहने लगे संस्कृत के अच्छे पंडित थे। ये प्रकृति के बड़े प्रेमी थे। इनकी कविताओं में प्रकृति सौंदर्य की छटा दिखाई देती है। प्रारम्भ में ये ब्रजभाषा में लिखते थे फिर बाद में

खड़ी बोली में लिखने लगे। भारतेन्दु युग में खड़ी बोली में कविता लिखने के इन्होंने प्रयोग किये। यद्यपि इनकी खड़ी बोली शुद्ध नहीं रहती थी उसमें ब्रज भाषा के ज्यों, त्यों, लों इत्यादि शब्दों का प्रयोग रहता था। इन्होंने हिन्दी में स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) की कविताएं लिखी हैं अर्थात् नैसर्गिक सौन्दर्य के वर्णन से परिपूर्ण रचनाओं का इन्होंने हिन्दी में सूत्रपात किया जिसकी प्रेरणा इन्हें अंग्रेजी साहित्यकार 'गोल्ड स्मिथ' की रचनाओं से मिली। १८३१ में इन्होंने गोल्ड स्मिथ की "हर्मिट" (Hermit) नामक रचना का हिन्दी की खड़ी बोली में एकांत वासी योगी के नाम से अनुवाद किया उनकी दूसरी पुस्तक श्रान्त पथिक हैं जो गोल्ड स्मिथ की ट्रेवलर (Traveller) का अनुवाद है। उन्हीं की तीसरी रचना डैजर्टेड विलेज (Deserted village) का इन्होंने हिन्दी में उजड़ ग्राम के नाम से ब्रजभाषा में अनुवाद किया।

इन्हें प्रकृति की क्रीड़ा भूमि काश्मीर तथा अन्य पहाड़ी प्रदेशों में रहने का अवसर मिला था इस लिए इन्होंने 'काश्मीर सुषमा' नामक पुस्तक काश्मीर के प्राकृतिक सौंदर्य पर लिखी है। इनके राष्ट्रीय गीत 'भारत गीत' नामक ग्रंथ में मिलते हैं। इन्होंने कालिदास के 'ऋतुसंहार' का भी अनुवाद किया है।

✓ **अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'** संवत् (१८२२ से २००४) इनका जन्म उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के निजामाबाद नामक स्थान पर हुआ। प्रारंभिक शिक्षा संस्कृत से हुई फिर मिडिल की परीक्षा पास करके काशी अंग्रेजी पढ़ने गये परन्तु अस्वस्थता के कारण अध्ययन स्थगित करना पड़ा। ये संस्कृत उर्दू और फारसी के विद्वान थे। नौकरी छोड़ने के बाद निजामाबाद के तहसीली स्कूल में अध्यापक हो गये फिर कानूनगो हो गये

और १९२३ में पेंशन हो जाने के बाद हिन्दू विश्व विद्यालय के संस्थापक पंडित मदन मोहन मालवीय जी ने इन्हें विश्व विद्यालय में इनकी योग्यता को देख कर हिन्दी का प्राध्यापक नियुक्त कर दिया ।

इनका साहित्यिक जीवन ब्रजभाषा की रचनाओं से प्रारंभ होता है । इनका 'रस कलश' ब्रजभाषा में रीति कालीन ग्रंथों के अनुकरण पर लिखा गया है जिसमें साहित्य के नवरसों और नायिका भेद पर बहुत सुंदर ढंग से विवेचना किया गया है । इसमें इनका ऋतु वर्णन भी बहुत सुंदर है ।

बाद में ये महावीर प्रसाद जी की प्रेरणा से खड़ी बोली में लिखने लगे और द्विवेदी जी के अनुकरण पर ही इन्होंने संस्कृत छंदों और संस्कृत समस्त पदावली का प्रयोग किया । इन्होंने इस शैली में 'प्रिय प्रवास' नामक ग्रन्थ लिखा जो कि खड़ी बोली का पहिला महाकाव्य है । इसकी भाषा कहीं कहीं अत्यन्त संस्कृत गमित हो गयी है । इस काव्य में कृष्ण के मथुरा बास और बाल चरित्र का वर्णन है । कृष्ण को ब्रज के रक्षक नेता के रूप में अंकित किया गया है तथा गोपियों और राधा का प्रेम अन्त में देश प्रेम और धर्म सेवा के रूप में परिवर्तित करके लोक संग्रह की भावना को दिखाया गया है । यह विप्रलम्भ शृंगार का सुन्दर ग्रन्थ है ।

बोल चाल की भाषा में इन्होंने "चुभते चौपदे, चोखे चौपदे और आँसू" नामक पुस्तकें लिखी हैं । इन्होंने एक और खण्डकाव्य 'बैदेही बनवास' लिखा जिसमें सीता के लोकापवाद के कारण वन भेजे जाने की कथा है । परन्तु इसमें सीता को वन धोखे से नहीं भेजा गया अपितु उसे यह अवगत करा दिया गया

है कि उसे लोकपवाद के कारण भेजा जा रहा है । इन्होंने गद्य रचना भी की है । 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अध खिला फूल' नामक उपन्यास इनके प्रसिद्ध गद्य ग्रन्थ हैं ।

✓ **मैथिलीशरण गुप्त**— इनका जन्म भौंसी के पास चिर-गाँव नामक ग्राम में संवत् १६४३ में हुआ । इनके पिता श्री रामचरण जी काव्य प्रेमी थे । मैथिली शरण जी पर पिता का प्रभाव स्वाभाविक रूप से पड़ा । इनका शिक्षण घर पर ही हुआ । यद्यपि कुछ दिन भौंसी पढ़ने के लिए जरूर भेजे गये थे ।

बचपन से ही इनमें काव्य की प्रतिभा पायी जाती है । ये अपने पिता को छंद बना कर दिखाया करते थे । गुप्त जी भारतीय संस्कृति के पुजारी हैं और राष्ट्रीय विचार धारा से परिपूर्ण हैं । इनकी प्रारंभिक रचनाएँ राष्ट्रीय हैं । इनकी 'भारत भारती' सबसे पहिली प्रसिद्ध राष्ट्रीय रचना है जिसमें भारत के प्राचीन गौरव का वर्णन करके गुलामी की दुर्दशा का वर्णन किया गया है जिससे कि देशवासियों के हृदय में प्राचीन गौरव को प्राप्त करने की भावना जाग उठे । समाज सुधार के लिए 'हिन्दू' और सिक्ख गुरुओं का चित्रण 'गुरुकुल' नामक रचना में किया गया है । 'जयद्रथ-वध' एक खण्ड काव्य है जिसमें अभिमन्यु की मृत्यु के बाद अर्जुन द्वारा जयद्रथ के वध का वर्णन है । इसके बीच में राजनैतिक सिद्धान्तों का काव्यमय वर्णन है । इन्होंने लक्ष्मण के चरित्र को लेकर पंचवटी नामक खण्ड काव्य लिखा है । भक्तिकार में इन्होंने रहस्यवाद की मुक्तक रचनाएँ की हैं ।

गुप्त जी की प्रतिभा का पूर्ण विकास हम 'साकेत और यशोधरा में' पाते हैं । साकेत में उर्मिला को प्रधानता दी गयी है और

यशोधरा में गौतम पत्नी यशोधरा का चित्रण किया गया है। उन्हें इन ग्रन्थों के लिखने की प्रेरणा रवीन्द्र नाथ ठाकुर के एक निबंध “काव्य की उपेक्षिता नारियाँ” में मिली। साकेत में राम के जीवन की घटनाएँ संक्षेप में देकर उर्मिला के चरित्र को प्रधानता दी गयी है। इसमें उर्मिला के त्याग को दिखा कर एक भारतीय नारी के आदर्श चरित्र को अंकित किया गया है। इसमें अयोध्या के राज महलों में चौदह वर्ष तक लक्ष्मण के विरह में तपस्या करती हुई उर्मिला के अद्वितीय चरित्र को दिखाया गया है। गुप्त जी ने साकेत लिखकर हिन्दी के वर्तमान युग के प्रबन्ध काव्य सम्बन्धी अभाव को दूर किया है। इस महा काव्य पर गुप्त जी को मंगला प्रसाद पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया।

साकेत के हिन्दी जगत में सम्मान को देख कर गुप्त जी का ध्यान गौतम बुद्ध के विरह में कपिल वस्तु के राजभवनों में तपस्या करने वाली यशोधरा की ओर गया और उन्होंने ‘यशोधरा’ नामक ग्रन्थ उसके अपूर्व त्याग के वर्णन को लेकर लिखा।

इन्होंने हिन्दी संसार को धर्मिक ऐतिहासिक पौराणिक, राष्ट्रीय और साहित्यिक कृतियाँ दी हैं। ‘चंद्रहास और तिलोत्तमा’ नामक नाटक भी लिखे हैं। पलासी का युद्ध मेघनाथ वध, विरहिणी—ब्रजांगना, उमर खैयाम की रुबाइयाँ आदि पुस्तकों का आपने अनुवाद किया है। गुप्त जी की ३४ रचनाएँ प्रसिद्ध हैं जिनमें गुरुकुल, भारत भारती, जयद्रथ वध, पंचवटी, साकेत, यशोधरा, द्वापर, सिद्ध राज, शकुन्तला, जय भारत आदि प्रसिद्ध हैं।

ये इस समय के प्रतिनिधि कवि हैं इनकी रचनाओं को देखते हुए आगरा विश्वविद्यालय ने इन्हें पी-एच० डी० की सम्मानित

उपाधि से विभूषित किया है और स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद राष्ट्र-पति ने इनको राज्य परिषद का मनोनीत सदस्य बनाया है ।

रामनरेश त्रिपाठी—इनका जन्म संवत् १९४६ में जिला जौनपुर के अंतर्गत कोइरीपुर नामक ग्राम में हुआ । इस समय ये प्रयाग में रहते हैं । द्विपदीकालीन कवियों में ये अपनी कविता के कारण सदैव स्मरणा किये जायेंगे । इन्होंने भारतवर्ष की दूर दूर तक की यात्रा की है और अपनी रचनाओं में रामेश्वरम् और काश्मीर आदि का प्रकृति-वर्णन बहुत सुंदर किया है । इन्होंने समय और परिस्थिति के अनुकूल अपनी विचारधारा के अनुसार कथाएँ बना कर देशभक्ति, कर्म और प्रेम का दृष्टिकोण अपने काव्य में उपस्थित किया है । इनकी रचनाओं में प्रकृति का स्वस्थ और सुन्दर रूप चित्रित किया गया है । मिलन, पथिक और स्वप्न इनकी तीन रचनाएँ उच्च कोटि की हैं । इनकी भाषा प्रसाद गुण-युक्त और शुद्ध होती है । इन्होंने अनेक ग्रन्थों का संपादन किया है जिनमें 'कविता-कौमुदी' एक बहुत सुन्दर संग्रह निकला है । इसमें प्राचीन और नवीन हिन्दी कवियों की रचनाओं का कवियों के परिचय सहित संग्रह किया गया है । इन्होंने देश के ग्रामगोतों का स्तुत्य संग्रह किया है । बालोपयोगी साहित्य की वृद्धि में भी इन्होंने बहुत योग दिया है । इनकी कविता में राष्ट्रीय भाव और देशसेवा की भावना भी पाई जाती है । संसार से अलग रह कर केवल आत्म-कल्याण-साधन की अपेक्षा संसार में रह कर अपने देशबन्धुओं का उपकार करने एवं दुःख दूर करने का संदेश इन्होंने अपने प्रसिद्ध काव्य "पथिक" में दिया है । इन्होंने कई आलोचनात्मक निबन्ध भी लिखे हैं । भाषा संस्कृतमयी, परिष्कृत और भावानुकूल है । इनकी कहानियों का संग्रह "स्वप्न के चित्र" और एक नाटक "प्रेम लोक" के नाम से छप चुका है ।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'—(सं० १६२३ से १६८६)
 आधुनिक काल के अत्यन्त प्रतिष्ठित ब्रजभाषा के कवि बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जन्म काशी के एक प्रतिष्ठित अग्रवाल कुल में हुआ था। इनके पिता भारतेन्दु के घनिष्ठ मित्रों में से थे। उनकी सत्संगति से रत्नाकर जी की भी काव्य की ओर अभिरुचि हुई। ये बाल्यावस्था से ही कविता करने लगे। इन्होंने काशी के क्वीन्स कालेज से बी०ए० पास किया और उसके बाद आवागढ़ राज्य में नौकरी की, फिर बाद में अयोध्या के महाराज प्रतापसिंह के प्राइवेट सेक्रेटरी हो गये। महाराजा की मृत्यु के बाद महारानी के पास उसी पद पर जीवन पर्यन्त काम करते रहे। ये प्राचीन ब्रजभाषा साहित्य के बड़े भारी ज्ञाता थे। इन्होंने 'बिहारी सतसई' पर एक बहुत उत्कृष्ट टीका लिखी जिसका नाम 'बिहारी रत्नाकर' है। ये सूरसागर का भी संपादन कर रहे थे परन्तु असामयिक मृत्यु के कारण पूरा न कर सके। इन्हें ब्रजभाषा से अत्यधिक प्रेम था। हरिश्चन्द्र काल से ही ये ब्रजभाषा में कविता करते थे और उसके बाद भी ब्रजभाषा में ही कविता करते रहे। इनकी रचनाएँ 'उद्धव-शतक, गंगावतरण, हरिश्चन्द्र, कलकाशी, गंगा लहरी' हैं। इनमें 'उद्धव-शतक' सर्वश्रेष्ठ काव्य है। 'गंगावतरण' भी एक प्रसिद्ध रचना है। उद्धव-शतक में एक प्राचीन परिपाटी का पालन करते हुए ये कुछ नवीनता ला सके हैं। उस पर भक्तिकाल और रीतिकाल का मिश्रित प्रभाव है। इनकी गोपियों में सूर की गोपियों की प्रेम निष्ठा और नंददास की गोपियों की तार्किकता का बहुत सुन्दर ढंग से समन्वय पाया जाता है। इसका विषय ही गोपियों और कृष्ण के शुद्ध प्रेम और विरह-वेदना को दिखाना है। भाषा की सजावट इनकी विशेषता है। इसमें अलंकारों का भी बड़ा सुंदर प्रयोग किया गया है। 'गंगावतरण' में गंगा के पृथ्वी-

अवतरण की कथा को प्रबन्ध काव्य में लिखा है । ये २०वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति थे ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—(सं० १९४१—१९६८)

शुक्ल जी का जन्म सं० १९४१ में बस्ती जिले के अगोना ग्राम में हुआ । बाल्यकाल में इन्हें संस्कृत की शिक्षा दी गयी । सं० १९५८ में इन्होंने मैट्रिक पास किया और फिर एफ० ए० और कानूनगो की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने का असफल प्रयास किया । इसके बाद वे मिर्जापुर के मिशन स्कूल में अध्यापक हो गये । वहाँ पर ही श्री बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' जी के संपर्क में आने से इन्होंने साहित्यसेवा का कार्य प्रारंभ किया । इनके प्रारंभिक निबन्ध प्रेमघन जी द्वारा सम्पादित "आनन्द-कादम्बिनी" में प्रकाशित हुए और बाद में ये सरस्वती में भी लिखते रहे । हिन्दी संसार में इनके निबन्धों का बड़ा आदर हुआ और इन्हें बहुत ख्याति मिली । संवत् १९६५ में काशी नागरीप्रचारिणी सभा में ये "हिन्दी शब्दसागर" के सहायक संपादक बन गये । आठ, नौ वर्ष तक नागरीप्रचारिणी पत्रिका का इन्होंने बड़ी योग्यता से संपादन किया । इसके बाद ये काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक बन गये और कालान्तर में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हो गये । इनकी मृत्यु १९६८ में हुई ।

शुक्ल जी का प्रादुर्भाव हिन्दी साहित्य में एक युगान्तकार महत्त्वपूर्ण घटना थी । ये उच्चकोटि के निबन्धकार और आलोचक माने जाते हैं । ये अत्यन्त गंभीर और विचालशील लेखक थे । इन्होंने क्रोध, घृणा, उत्साह आदि मनोविकारों पर विश्लेषणात्मक लेख लिखे । ये उच्चकोटि के समालोचक थे और सूर तुलसी, तथा जायसी पर इनकी समालोचनाएँ अद्वितीय हैं जो स्थायी साहित्य की वस्तुएँ हैं । आलोचना के साथ साथ शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य

का इतिहास लिखा। इस ग्रन्थ पर इन्हें हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयाग से ५००) का पुरस्कार दिया गया। “चिन्तामणि” के निबन्धों पर हिन्दी साहित्य-सम्मेलन ने इन्हें १२००) का मंगला-प्रसाद पारितोषिक देकर सम्मानित किया।

इसके अतिरिक्त आपने अनुवाद किये हैं। ‘विश्व प्रपंच, कल्पना का आनन्द, राज्य-प्रबन्धशिक्षा, मेगस्थनीज़ का भारत-वर्षीय विवरण’ आदि ग्रंथों का इन्होंने अँगरेजी से अनुवाद किया है। बंगला के एक उपन्यास “शशांक” का भी इन्होंने हिन्दी में अनुवाद किया।

इनके निबन्ध आलोचनात्मक एवं गवेषणात्मक हैं। हिन्दी में आलोचना को शुक्त जी ने नया रूप दिया। इनके निबन्ध निगमन शैली के हैं जिनमें पहले विचार या सिद्धान्त को कह दिया जाता है फिर उदाहरणों, उद्धरणों तथा तर्कों द्वारा उस सिद्धान्त की पुष्टि की जाती है। इनके निबन्धों में आवश्यकतानुसार कहीं कहीं हास्य और व्यंग्य, दोनों का प्रयोग पाया जाता है। इनकी भाषा संस्कृतगर्भित है और कहीं कहीं उर्दू के प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया है। गूढ़ विचार व्यक्त करने के समय इनकी भाषा अधिक संस्कृतनिष्ठ हो जाती है तथा अपनी बात को ये छोटे-छोटे वाक्यों में समझाते हैं।

इनका नाम गद्य-लेखकों और समालोचकों में तो अग्रगण्य है ही किन्तु ब्रजभाषा काव्य के आधुनिक कवियों में भी इनका नाम आदर से लिया जाता है। इन्होंने ‘एडविन आरनौल्ड’ के लाइट आफ एशिया (Light of Asia) के आधार पर ‘बुद्धचरित’ नाम का एक प्रबन्ध काव्य लिखा है। एक और प्रबन्ध काव्य इन्होंने “अभिमन्यु-वध” लिखा है।

बाबू श्यामसुंदरदास बी० ए०—(१९३२ से २००२)

इनका जन्म बनारस में देवीदास खन्ना के घर में हुआ था। इंटर पास हो जाने के बाद इन्होंने अपने मित्रों—रामनारायण मिश्र और शिव-कुमार सिंह आदि—की सहायता से संवत् १९५० में 'काशी नागरी-प्रचारिणी सभा' की स्थापना की। विद्यार्थी-जीवन से ही इन्हें हिंदी से प्रेम था। उस समय ये सेंट्रल हिंदू कालेज बनारस में हिंदी, अंग्रेजी के अध्यापक थे। कुछ दिन शिमला और काश्मीर में काम किया फिर लखनऊ में एक हाई स्कूल में मुख्याध्यापक हो गए। वहाँ से हिंदू विश्वविद्यालय बनारस में हिंदी विभाग के अध्यक्ष बन कर गये। मृत्यु के पाँच वर्ष पूर्व इन्होंने वहाँ से अवकाश ग्रहण कर लिया था। सं० २००२ में इनकी मृत्यु हुई।

इनका सबसे बड़ा कार्य 'नागरीप्रचारिणी सभा' की स्थापना है। हिंदी की उन्नति के लिए इस सभा ने बहुत बड़ा काम किया। इस सभा की सारी कीर्ति इनके त्याग और सतत परिश्रम का फल है। दूसरा कार्य इन्होंने सभा के सदस्यों के योग से प्राचीन हिंदी ग्रंथों की खोज एवं संपादन का किया। इन खोजों के कारण से ही हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा जा सका और हिंदी साहित्य की अभिवृद्धि हुई। तीसरा कार्य सभा के योग से "हिंदी शब्दसागर" और "वैज्ञानिक कोष" का निर्माण है जिनके तैयार करने में बहुत से विद्वानों ने योग दिया परंतु प्रधान सम्पादक ये ही थे। चौथा कार्य इन्होंने उच्चकोटि के ग्रंथों के निर्माण का किया है। 'नागरी-प्रचारिणी सभा' एवं अन्य महाभाषाओं के प्रयत्नों से हिंदी को विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में स्थान मिल गया था। और बी० ए० तथा एम० ए० के विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए अंग्रेजी पुस्तकों की सहायता से बाबू साहब ने 'भाषाविज्ञान' और 'साहित्यालोचन'

आदि ग्रंथ लिखे । इनकी सेवाओं को देख कर सभा ने 'कोशोत्सव-स्मारक संग्रह' ग्रंथ इन्हें समर्पित किया और हिंदू विश्वविद्यालय काशी ने इन्हें डा० लिट्० को उपाधि से सम्मानित किया । इनके प्रसिद्ध मौलिक ग्रंथ ये हैं :—

१—हिन्दी भाषा और साहित्य

२—साहित्यालोचन

३—भाषाविज्ञान

४—हिन्दी भाषा का विकास

५—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

६—गोस्वामी सुलसीदास

७—रूपक-रहस्य

८—हिंदी के निर्माता २ भाग

इन्होंने बहुत से ग्रंथों का सम्पादन किया । अनेक पाठ्य पुस्तकें और संकलित ग्रंथ तैयार किए और अनेक लेख और निबंध इन्होंने लिखे हैं । इनकी भाषा शुद्ध संस्कृतनिष्ठ हिंदी है ।

✓ **प्रेमचन्द**—(सं० १६३७ से १६४३) इनका असली नाम धनपतराय था । इनका जन्म सं० १६३७ में कायस्थ कुल में बनारस से चार मील दूर “लमही” नामक ग्राम में हुआ था । प्रारम्भ में इन्होंने उर्दू और फारसी की शिक्षा प्राप्त की, फिर मैट्रिक पास कर एक स्कूल में २०५ मासिक पर अध्यापक हो गये । इनकी आर्थिक स्थिति प्रारम्भ से ही अच्छी नहीं थी । किसी तरह इन्होंने बी० ए० पास किया । गाँधीजी के राष्ट्रीय असहयोग आंदोलन के समय इन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ दी । १६५८ से ये कहानियाँ लिखने लगे और पाँच छः वर्ष बाद उपन्यास लिखने लगे । प्रारम्भ में ये उर्दू में लिखते थे

पर १९७२ से ये हिन्दी में उपन्यास और कहानियाँ लिखने लगे। इन्होंने 'मर्यादा और मायुरी' का सम्पादन भी कुछ समय तक किया फिर "सरस्वती प्रेस बनारस" की स्थापना करके 'हंस और जागरण' का सम्पादन करते रहे। इन्होंने ४०० के लगभग कहानियाँ लिखी हैं जिनका संग्रह मानसरोवर के भागों में किया गया है। इन्होंने "वरदान, निर्मला, गवन, प्रतिज्ञा, कायाकल्प, कर्मभूमि, रंगभूमि, प्रेमाश्रम, सेवा सदन और गोदान" नामक उपन्यास लिखे हैं। इन्होंने तीन नाटक 'प्रेम की वेदी पर, कर्बला और संग्राम' लिखे हैं। दुर्गादास और शेख सादी की जीवनी तथा कुछ बालोपयोगी साहित्य का सृजन किया है।

प्रेमचन्द अपने उपन्यासों और कहानियों के कारण विश्व-विख्यात हैं। इन्हें "उपन्याससम्राट" के नाम से याद किया जाता है। ये जनता के साहित्यकार माने जाते हैं। इनके उपन्यासों और कहानियों का विषय दीन हीन निर्धनों का चित्रण और ग्राम की समस्याएँ ही रहा है। इन्होंने पूँजीपतियों का गुणगान न करके दीन दुखियों को अपनाया है। इनके साहित्य में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक या नैतिक कुरीतियों की आलोचना पाई जाती है परन्तु यह आलोचना पात्रों के चरित्र में इस ढंग से रखी जाती है कि बुरी नहीं मानचूम पड़ती, और मनोरंजन के साथ साथ पाठक सुधार की ओर प्रेरित होता है। प्रेमचन्द जी के प्रादुर्भाव से हिन्दी कथा एवं उपन्यास साहित्य में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। इनके कारण भाषा, शैली और कथा-निर्वाह को प्रणाली में नवीनता आ गयी। घटनाओं का उल्लेख करके कथा को आगे बढ़ाने के स्थान पर चरित्र-चित्रण की ओर ध्यान दिया जाने लगा। इस नवीन पद्धति तथा नवीन परम्परा को जन्म देने का श्रेय इसी उपन्यास-लेखक प्रेमचन्द को है। गरीबी भरे जीवन की बिडम्बना से जीवन भर

संघर्ष करने वाला यह कथाशिल्पी हिन्दी उपन्यास साहित्य का उच्चतम कलाकार है। इनकी शैली पर इनके व्यक्तित्व की छाप है और अपनी शैली के ये स्वयं निर्माता थे। इनकी भाषा सरल और उर्दू प्रचलित शब्दों से युक्त है। ग्रामीण चरित्रों के संवाद इत्यादि में इन्होंने ग्रामीण भाषा का प्रयोग किया है। इन्होंने अंग्रेजी के शब्दों को तद्भव रूप में ग्रहण किया है। प्रेमचन्द की रचनाओं का सम्पूर्ण भारत में प्रचार हुआ। इनकी साहित्यिक कृतियों का उर्दू, मराठी, गुजराती, बंगला, तेलुगू आदि भारतीय भाषाओं में तथा अंग्रेजी, रूसी और जापानी आदि विदेशी भाषाओं में अनुवाद किया गया है। हिन्दुस्थानी एकेडेमी प्रयाग ने इन्हें ५०० का पुरस्कार देकर भी सम्मानित किया था।

जयशंकर प्रसाद—(संवत् १९४६ से १९९४ तक) प्रसाद जी का जन्म काशी के एक प्रतिष्ठित घराने में संवत् १९४६ में हुआ। इनके पिता श्री देवीप्रसाद जी सुधनी साहू के नाम से प्रसिद्ध थे जो काशी के एक प्रसिद्ध तम्बाकू के व्यापारी थे। इन्होंने क्वीन्स कालेज में ७वीं कक्षा तक पढ़ा था पर घर में ही संस्कृत अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू और फारसी का व्यापक अध्ययन किया था। संस्कृत और उसके साहित्य से प्रसाद जी को बहुत प्रेम था और संस्कृत के उपनिषद् साहित्य तथा बौद्ध दर्शन का प्रसाद के जीवन और साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ा। ये प्राचीन संस्कृति के पुजारी थे। इन्होंने बंगाली साहित्य का भी अध्ययन किया था।

पिता की अकाल मृत्यु के कारण इनके बड़े भाई ने घर और दूकान का काम सँभाला परन्तु वे भी शीघ्र ही चल बसे अतः १७ वर्ष की अवस्था में ही इनको सारा बोझ अपने कंधों पर

लेना पड़ा। घर और व्यापार का कार्य करते हुए भी ये साहित्य-सेवा में संलग्न रहे। बचपन से कविता के प्रति इनकी रुचि थी। इन्होंने हिन्दी में नवीन युग का सूत्रपात किया तथा हिन्दी साहित्य के अनेक अंगों की वृद्धि की। कविता, नाटक, उपन्यास, और कहानी इनके प्रिय विषय थे। इन्होंने तीन उपन्यास लिखे हैं—कंकाल, तितली और इरावती। इनके सभी नाटक ऐतिहासिक और पौराणिक हैं। उनमें भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल पात्रों का चरित्र चित्रण किया गया है। इनके प्रसिद्ध नाटक निम्न हैं :—राज्यश्री, विशाख, अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, कामना, स्कन्द गुप्त, एक घूंट, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी। इन नाटकों में पाश्चात्य और भारतीय शैलियों का सम्मिश्रण है। कवि होने के कारण इनके वर्णनों में कहीं कहीं काव्यात्मकता आ गयी है। इनके नाटक कलामय होते हुए भी क्लिष्ट हैं। ये साधारण रंगमंच के योग्य नहीं। इन्होंने प्राचीन भारतीयों की सभ्यता एवं नैतिक श्रेष्ठता को दिखलाने का प्रयत्न किया है। इनके नाटकों के साधारण पात्र भी संस्कृतगर्भित भाषा बोलते हैं और दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन करते हैं। प्रसाद जी मूलतः कवि हैं फिर नाटककार और उसके बाद कहानीकार तथा उपन्यासकार। ये कहानी लिखने में विशेष सफल हुए हैं। हिन्दी में वे एक प्रकार से प्रथम मौलिक कहानीकार कहे जा सकते हैं। इनकी ग्राम नामक सत्र से पहिली कहानी १९६८ में 'इन्दु' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। प्रसाद जी की कहानी में कथानक की अपेक्षा भावों की प्रधानता रहती है। इनकी 'पुरस्कार' नामक कहानी में राजभक्ति और वैयक्तिक प्रेम का अच्छा समन्वय किया गया है। इन्होंने कुछ सामाजिक कहानियाँ लिखी हैं लेकिन इनकी ऐतिहासिक कहानियों का मूल्य अधिक है। इनकी कहानियों के संग्रह

‘आँधी, आकाशदीप, प्रतिध्वनि, नवपल्लव और इन्द्रजाल’ के नाम से निकल चुके हैं।

प्रसाद जी मूलतः कवि थे। इनकी समस्त रचनाओं में उनका कवि-हृदय झलकता है। इन्होंने प्रारंभ में ब्रज भाषा में कविताएँ लिखीं जिनका संग्रह ‘चित्राधार’ नामक ग्रन्थ में हुआ है। खड़ी बोली को इन्होंने बाद में अपनाया है। इनके काव्य-ग्रन्थ ‘चित्राधार, मन्वन्तर, कानन-कुसुम, भरना, आँसू, लहर, कर्णालय, कामायिनी’ हैं। ‘आँसू और कामायिनी’ बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। ‘आँसू’ का अन्त विश्व की मंगल-कामना में होता है और यह प्रसाद जी के मस्तक की घनीभूत पीड़ा है। ‘कामायिनी’ खड़ी बोली का प्रसिद्ध महाकाव्य है जिसमें खण्ड प्रलय के बाद नव सृष्टि के निर्माण की कथा कही गयी है जिसके मुख्य पात्र मनु, श्रद्धा और इडा हैं। इस कथानक की प्रेरणा उन्हें उपनिषद् साहित्य से मिली है। इनकी कविता की भाषा भी संस्कृत के तत्सम शब्दों से युक्त है। कहीं कहीं विचारों की दार्शनिकता के कारण तथा भाषा की क्लिष्टता के कारण इनकी कविता क्लिष्ट हो गयी है फिर भी ये अपने युग के सर्वश्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं। इनके काव्य छायावाद और रहस्यवाद शैली में लिखे गये हैं। इन्हें छायावाद का प्रवर्तक माना जाता है।

✓ पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’—इनका जन्म संवत् १८५५ में बंगाल के मेदिनीपुर जिले की महिषादल नामक रियासत में हुआ था। इनका अंग्रेजी शिक्षण मैट्रिक तक हुआ। बंगाल में जन्म होने एवं बाल्यावस्था बीतने के कारण बंगला भाषा और साहित्य का इन्हें अच्छा ज्ञान है और इसी कारण कोमलकान्त पदावली लिखने की ओर वे अप्रसर हो सके। दर्शन ग्रन्थों का

इन्होंने अध्ययन किया, इसी कारण इनकी कविता में दार्शनिक भाव अधिक मिलते हैं। आधुनिक छायावादी कवियों में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। पहिले ये बंगाली में कविता करते थे पर बाद में हिन्दी में लिखने लगे। हिन्दी अतुकान्त छन्दों का प्रयोग पहिले से ही हो रहा था परन्तु निराला ने स्वच्छन्द छन्दों का सूत्रपात किया। संभवतः इसी विशेषता के कारण इन्होंने अपना नाम 'निराला' रक्खा है। इनकी "जागरण, मैं और तुम" आदि रचनाएँ दार्शनिक चिंतन से प्रेरित हैं। निराला जी शब्द-चित्र अंकित करने में बहुत निपुण हैं। इन्होंने प्रकृति के ही नहीं, पात्रों के भी सुन्दर चित्र खींचे हैं। 'जूही की कली' में प्रकृति का सौंदर्य-वर्णन मानवीकरण के रूप में किया गया है। वायु को कली का नायक बनाया गया है। निराला जी की कविताओं का पहिला संग्रह 'परिमल' के नाम से, दूसरा 'अनामिका' और तीसरा 'गीतिका' के नाम से प्रकाशित हुआ है। ये आर्य संस्कृति के भक्त हैं। तुलसीदास जी के प्रति श्रद्धाञ्जलि स्वरूप आपने 'तुलसीदास', नामक एक सुन्दर काव्य लिखा है। निराला जी ने कुछ प्रगतिशील कहलाई जाने वाली कविताएँ भी लिखी हैं। इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ती हुई मजदूर औरत का इन्होंने करुणामय चित्र 'तोड़ती पत्थर' नामक रचना में किया है। इनकी "कुकुरमुत्ता" नामक कविता में वर्ग संघर्ष की कहानी है। इनकी भाषा संस्कृत गार्भित है। इन्होंने 'अपसरा', अलका, निरुपमा, कुल्ली भाट, काला बाजार, विल्लेसुर बकरिहा नामक उपन्यास लिखे। इन्होंने "प्रबन्ध प्रतिभा" नामक निबन्ध ग्रन्थ भी लिखा है। छायावाद की बृहद् त्रयी में निराला जी का स्थान है।

✓पं० सुमित्रानन्दन पंत—पंत जी का जन्म संवत् १९५८ में अल्मोड़ा जिले के कौसानी गाँव में हुआ था। इनका

अध्ययन एफ० ए० तक काशी तथा प्रयाग में हुआ । ये संस्कृत, बंगला तथा अंग्रेजी की अच्छी जानकारी रखते हैं । हिन्दी के छायावादी कवियों में इनका विशेष स्थान है । प्रकृति-सौंदर्य के ये प्रेमी हैं । कौसानी की प्राकृतिक सुषमा ने इन्हें वाणी दी । प्रकृति के साहचर्य ने वाणी को झंकार दी और वह गीत बनकर गूँज उठी । इनके मुख्य काव्य ग्रन्थ “वीणा, ग्रंथि, पल्लव, गुंजन, युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या” हैं । ग्रंथि एक प्रेमप्रधान दुःखान्त काव्य है । ‘वीणा’ और पल्लव, में प्राकृतिक सौंदर्य के शब्दचित्र हैं जिनमें यत्र तत्र रहस्यवाद की झलक है । गुंजन तथा युगान्त में इनके दार्शनिक विचार भरे हुए हैं । इनकी ‘युगवाणी और ग्राम्या’ प्रगतिवादी रचनाएँ हैं ।

पंत की प्रतिभा विकासशील है । पहिले ये प्रकृति के सौंदर्य के उपासक थे और इन्होंने छायावाद एवं रहस्यवाद की रचनाएँ कीं । बाद में ये युग से प्रभावित होकर प्रगतिवादी कवि बने और इन पर साम्यवाद की विचारधारा का प्रभाव पड़ा । ‘युगवाणी और ग्राम्या’ में इसीलिए पंत जी ने मानव को ऊपर उठाने की बात कही है । पंत की नवीनतम रचनाएँ गांधीवाद और अरविन्द की आध्यात्मिकता से प्रभावित हैं । इन्होंने ‘ज्योत्स्ना’ नामक एक नाटक लिखा है और पाँच कहानियाँ नामक एक कहानी-संग्रह प्रस्तुत किया है । इनकी भाषा में माधुर्य गुण की प्रधानता है । इनके काव्य में माधुर्य और सौंदर्य है । पंत और निराला दोनों ने खड़ी बोली के गौरव की वृद्धि की है ।

श्री महादेवी वर्मा—इनका जन्म संवत् १९६४ में फर्रुखाबाद में हुआ । इनका शिक्षण एम० ए० तक हुआ । ये प्रयाग महिला पीठ की आचार्या हैं । वर्तमान युग के छायावादी

लेखकों में इनका विशेष स्थान है। इनकी कविता में दार्शनिकता, वेदना तथा निराशा का अंश अधिक रहता है। इन्होंने प्रकृति के चिरन्तन सौंदर्य के पीछे उम अदृश्य वेदना की छाया को अनुभव किया है। यद्यपि मीरा की सी प्रेम साधना असम्भव है तो भी इन्होंने आध्यात्मिक वियोग की सुंदर अभिव्यक्ति की है। इनकी कविता में दुःख की तीव्र अनुभूति है। इनकी रचनाओं के संग्रह 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत', 'यामा' और 'दीपशिखा' हैं। इनकी भाषा संस्कृतगर्भित है। कहीं कहीं इनकी कल्पनाएँ और शब्दचित्र दुरुह हो गये हैं।

सियाराम शरण गुप्त—इनका जन्म संवत् १८५२ में भौँसी के पास चिरगाँव नामक ग्राम में हुआ। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के ये छोटे भाई हैं। इनकी कविता में राष्ट्रीयता और भावुकता का अच्छा सामञ्जस्य पाया जाता है। काव्य के अतिरिक्त उपन्यास और कहानियाँ भी इन्होंने लिखी हैं। इनकी रचनाओं में 'मौर्य-विजय' अनाथ, आर्द्रा, दुर्वादल, अंतिम आकांक्षा, विषाद, मृगमयी, नारी तथा पाथेय' हैं। अपने अग्रज की भाँति सियारामशरण जी पर भी गांधीवाद का पूरा प्रभाव है। इन्होंने 'बापू' नामक एक पुस्तक गांधी जी पर लिखी है। 'नकुल और नोआखाली' नामक दो छोटी छोटी पुस्तकें भी निकली हैं। नोआखाली में गांधी-वादी विचारधारा को दिखलाया गया है।

श्री सुभद्राकुमारी चौहान (संवत् १९६१ से २००५) ¹⁶⁵¹⁻²⁰
इनका जन्म प्रयाग में संवत् १९६१ में हुआ। १९७६ में खंडवा के ठाकुर लक्ष्मण सिंह चौहान से इनका विवाह हुआ। इन्होंने प्रयाग के क्रास्थवेट गर्ल्स स्कूल में शिक्षा पायी परन्तु गांधी जी के असहयोग आन्दोलन की लहर में पड़ना छोड़ दिया और

राष्ट्रीय काम करने लगीं । कई बार जेल भी गईं । विवाहोपरांत ये जबलपुर में रहने लगीं और इनका राजनैतिक कार्य जारी रहा । स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद ये मध्यप्रदेश की धारा सभा की सदस्या निर्वाचित की गयीं और एक ही वर्ष बाद संवत् २००५ में इनकी मृत्यु हो गई ।

राजनैतिक कार्य करते हुए भी ये साहित्य की सेवा करती रहीं । बचपन से ही ये कविता लिखा करती थीं । देशप्रेम और बाल्य जीवन इनकी कविता के मुख्य विषय हैं । इनकी वर्णनशैली सजीव है जो सामने चित्र खड़ा कर देती है । 'भांसी की रानी' नामक कविता के प्रत्येक शब्द में वीर रस भरा हुआ है जिसको पढ़ते समय हृदय उछलने लगता है । यह कविता अपने समय की सर्वाधिक लोकप्रिय रचना थी । इनकी कविताओं का संग्रह 'मुकुल' के नाम से प्रकाशित हुआ और 'त्रिधारा' में कविताएँ संगृहीत हैं । 'बिखरे मोती' के नाम से इनकी कहानियों का एक और संग्रह निकला है । इन्हें १९८६ का सेक्सरिया पुरस्कार और १९८८ का सेक्सरिया महिला पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया ।

भगवतीचरण वर्मा—इनका जन्म उन्नाव जिले के शफीपुर ग्राम में संवत् १९६० में हुआ । ये कवि और गद्य-लेखक दोनों हैं । इनके काव्य ग्रंथ मधुकण, प्रेम संगीत और मानव, नूरजहाँ की कब्र हैं, तथा उपन्यास चित्रलेखा, टेढ़े मेढ़े रास्ते और तीन वर्ष, एवं कहानी-संग्रह 'इस्टालमेंट और दो बाँके' निकल चुके हैं । ये पत्रकार भी हैं । इनका चित्रलेखा उपन्यास हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासों में है । ये पहिले छायावादी कवि थे और इन पर दुःखवाद का प्रभाव था । इनकी काव्यता में नैराश्य और अतृप्ति की झलक रहती थी परन्तु अब ये प्रगतिवाद की ओर बढ़े हैं । इन्होंने 'भैंसागाड़ी' का वर्णन

करते हुए ग्रामों का जो कसूरा चित्र खींचा है वह हृदयस्पर्शी है 'मधुकण' की रचनाओं में दुःखवाद था और दुःख में ही वे शांति अनुभव करते थे। उसके बाद 'प्रेम संगीत' में उस अदृश्य प्रियतम से मिलन की चाह के गीत हैं। उनमें महादेवी जी के समान चिर विरह की कामना नहीं। 'मानव' का कवि प्रगतिकारी हो गया है और उसमें मानव के उत्पीड़न-शोषण के अंतर्नाद हैं और उससे उठने वाली विद्रोह की भावना का विस्फोट है। इनके यथार्थवादी गीतों के प्रतीक उजड़े ग्राम, कृश-काय कृषक और शोषित श्रमिक हैं। इनकी भाषा में माधुर्य की अपेक्षा ओज की मात्रा अधिक है। इसमें अंगरेजी शब्दों और मुहावरों का प्रयोग ज्यों का त्यों मिलता है।

✓ **रामकुमार वर्मा**—इनका जन्म सं० १९६२ में मध्यप्रदेश के सागर जिले में हुआ। ये आजकल इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास पर, जिसमें भक्ति काल तक का गवेषणात्मक विवेचन है, इन्होंने नागपुर विश्व-विद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि मिली है। इनकी कई कृतियाँ निकल चुकी हैं जिनमें 'अंजलि, अभिशाप, निर्णय, रूप-राशि, निशीथ तथा चित्ररेखा' प्रधान हैं। चित्ररेखा पर इन्होंने दो हजार रुपये का "देव पुरस्कार" मिला है। इन्होंने इधर एकांकी नाटक भी लिखने प्रारम्भ किये हैं जिनमें इन्होंने सफलता मिली है। ये भी दुःखवादी कवियों में हैं। जीवन के क्षणिक सुख में दुःख छिपा हुआ देखते हैं और प्रातः में संध्या की कालिमा और जीवन में मृत्यु छिपी हुई देखते हैं। इनकी नवीनतम कृति 'हिमहास' है जिसमें काश्मीर का वर्णन है। यह उच्चकोटि का गद्य काव्य है।

हरिवंशराय "वचन"—इनका जन्म इलाहाबाद में सं०

१९६४ में हुआ। ये इजाहाबाद विश्वविद्यालय में अँगरेजी के प्राध्यापक थे। और इन्हें लंदन यूनिवर्सिटी से अँगरेजी के एक प्रबंध पर पो-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई है जिसका विषय रहस्यवाद है। हिंदी में उमर खैय्याम की रुबाइयों से प्रेरणा लेकर 'हालावाद' को इन्होंने ही प्रारम्भ किया। इस वाद के अंतर्गत प्याला, शराब, साकी और मैखाने में आध्यात्मिकता के दर्शन किये जाते हैं। ये शराब को आध्यात्मिक मस्ती का संकेत मानते हैं।

यूँ तो उमर खैय्याम की रुबाइयों का गुप्त जी ने भी अनुवाद किया था परंतु उमर खैय्याम की मस्ती को हिंदी कविता में नये रूप में मुखरित करने वाले बच्चन हैं। बच्चन की मधुशाला जब निकली थी तब उन दिनों घर-घर नगर-नगर में जनता के मुख पर उसके पद चढ़ गए। इन्होंने 'मधुशाला, मधुवाला, मधुकलश, निशानिमंत्रण, एकांत सङ्गीत और आकुल अन्तर' आदि रचनाएँ हिंदी संसार को दी हैं। 'मधुशाला से मधुकलश' तक की रचनाओं में हालावाद अभिव्यंजित हुआ है परंतु 'निशा-निमंत्रण और एकांत सङ्गीत' में कवि हालावाद को छोड़कर विशुद्ध रहस्यवादी बन गया है। उनमें कवि की वेदना कथा मुखरित हो उठी है। इनकी कुछ कविताओं में गांधीवाद का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इन्होंने 'खादी के फूल' लिख कर गांधी जी के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है। 'सप्तर्गिणी' आपकी कविताओं का नवीनतम संग्रह है। इनका उपनाम है 'बच्चन'।

✓ **रामधारीसिंह 'दिनकर'**—इनका जन्म बिहार के मुंगेर जिले के सिमरिया गाँव में सं० १९६५ में हुआ। ये पटना विश्वविद्यालय के बी० ए० ऑनर्स हैं और इस समय राज्य परिषद् के मनोनीत सदस्य।

हैं। इन पर राष्ट्रीयता की छाप है और इनका हृदय पूँजी-पतियों की शोषण नीति से विच्युत है इसीलिए इनके गीतों में प्रगतिवादी भावनाएँ पाई जाती हैं। देश की पराधीनता की वेदना इनके गीतों में मुखरित हो उठी है। इनकी कविताओं के संग्रह “रेणुका, हैकार, रसवती, द्वन्द्वगीत, धूप छाँह, श्यामबेनी और बापू” हैं। इनका एक महाकाव्य ‘कुरुक्षेत्र’ निकला है। इन्होंने ‘मिट्टी की ओर’ नामक एक गद्य-ग्रंथ भी लिखा है। इनकी रचनाओं में साम्यवादी भावनाएँ हैं परंतु साथ ही गांधीवाद का प्रभाव भी है।

गुरुभक्त सिंह ‘भक्त’—इनका जन्म गाजीपुर जिले में जमनियाँ नामक स्थान पर सं० १९५० में हुआ। ये सहृदय कवि हैं। इनकी भाषा सरल है। इसमें मुहावरों का सुंदर प्रयोग है। इन्होंने प्रकृति-चित्रण भी बहुत सुंदर किया है। ‘जहाँगीर-नूरजहाँ’ तथा ‘शाहजहाँ-मुमताजमहल’ की प्रेम कहानियाँ आपके काव्य के विषय हैं। इन्होंने ‘नूरजहाँ’ नामक एक काव्य लिखा है जिस पर नागरीप्रचारिणी सभा ने पुरस्कार द्वारा इन्हें सम्मानित किया है। इनका एक और प्रबंध काव्य ‘विक्रमादित्य’ निकला है जिसमें चंद्रगुप्त द्वितीय और ध्रुवदेवी की प्रणय-कथा तथा चंद्रगुप्त की विजय-यात्राओं का वर्णन है। ‘वनश्री’ नामक इनका एक और काव्य ग्रंथ है जिसमें प्रकृति-चित्रण बहुत सुंदर हुआ है।

माखनलाल चतुर्वेदी—इनका जन्म सं० १९४५ में हुआ। ये खंडवा में रहते हैं। ‘कर्मवीर’ साप्ताहिक के सम्पादक हैं। अच्छे वक्ता, गद्य-लेखक और कवि हैं। ‘एक भारतीय आत्मा’ इनका उपनाम है। ये प्रमुख राष्ट्रीय कार्यकर्ता भी हैं और अपने अनुभवों के आधार पर राष्ट्रीय भावनाओं को बड़े मार्मिक रूप में

अभिव्यक्त करने में समर्थ हुए हैं। इनके काव्यसंग्रह 'हिम-कीरी-टिनी, हिम-तरंगिणी' के नाम से निकले हैं। इनके अन्य ग्रन्थ कृष्णार्जुन-युद्ध और साहित्य देवता हैं। इनकी 'पुष्प की अभिलाषा' बहुत सुंदर भावपूर्ण रचना है। ये कानपुर के प्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्ता एवं पत्रकार गणेशशंकर विद्यार्थी के सह-योगी रह चुके हैं।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—इनका जन्म सं० १९५४ में हुआ। कानपुर इनका निवास-स्थान है। ये पत्रकार, कवि एवं प्रमुख राष्ट्रीय कार्यकर्ता हैं। श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के ये भी सहयोगी थे। इनकी भाषा में ओज, राष्ट्रियता की भावना पाई जाती है। इनके प्रसिद्ध गीत विप्लव गायन, कैदी का स्वागत, पराजयगीत आदि प्रसिद्ध हैं। इनकी कविता में क्रांति और विप्लव का स्वर उठता है। विश्व भर में वे एक नवीन राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक व्यवस्था चाहते हैं जिसमें शोषण, उत्पीड़न और मानवता का अपमान न हो। इनके विचारों पर गांधीवाद का प्रभाव है, साम्यवाद का नहीं।

वृंदावनलाल वर्मा—हिन्दी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री वृंदावनलाल वर्मा का जन्म भौँसी जिले के मऊरानीपुर ग्राम में सं० १९४७ में हुआ। इनके प्रपितामह भौँसी राज्य के दीवान थे जो भारत के प्रथम स्वातन्त्र्य युद्ध में भौँसी की रानी लक्ष्मी-बाई के साथ युद्ध में काम आये। इन्होंने बी० ए० तक शिक्षा पाई है। ये भौँसी के प्रतिष्ठित वकील थे पर अब वकालत छोड़कर साहित्य की रचना करते हैं। इन्होंने नाटक और उपन्यास लिखे हैं परन्तु इनकी विशेष ख्याति के कारण इनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं। गढ़ कुंडार, विराटा की पद्मिनी, भौँसी की रानी,

मुसाहबजू, छत्रसाल, मृगनयनी और कचनार आदि इनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने बहुत से सामाजिक उपन्यास भी लिखे हैं जिनमें कुंडलीचक्र, प्रेम की भेंट, संग्राम, अचल मेरा कोई, शबनम और अमर बेल आदि प्रसिद्ध हैं। इन्होंने एक-दो एकांकी नाटक भी लिखे हैं तथा हरसिंगार, कलाकार का दण्ड और दबे पाँव नामक इनकी कहानियों के संग्रह निकल चुके हैं। ये सामाजिक उपन्यासों में उतने सफल नहीं हुए जितने ऐतिहासिक उपन्यासों में। हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास-लेखकों में इनका बहुत उच्च स्थान है। इनकी भाषा सरल और सुबोध है जिस पर बुंदेलखण्डी का प्रभाव स्पष्ट है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र—इनका जन्म आजमगढ़ में संवत् १९६० में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनकी शिक्षा आजमगढ़, काशी और प्रयाग में हुई। ये बारह वर्ष की अवस्था से ही तुकबन्दी करते थे। इनकी साहित्यिक प्रतिभा का विकास काशी में हुआ, जहाँ इन्होंने संस्कृत और हिन्दी के साहित्य का अध्ययन किया है, वहाँ इब्सन, शॉ, आदि पाश्चात्य साहित्यकारों का भी अध्ययन कम नहीं किया। इन्होंने इब्सन और शॉ से प्रभावित होकर ही हिन्दी में उसी प्रकार की रचनाओं को प्रारंभ किया। ये हिन्दी में सामाजिक समस्या नाटकों के प्रवर्तक माने जाते हैं। इनके नाटकों में पाश्चात्य शैली को अपनाया गया है।

मिश्र जी ने तीन प्रकार के नाटक लिखे हैं :—

- (१) सामाजिक समस्याओं को लेकर
- (२) इतिहास को आधार मान कर
- (३) पुराण को आधार बना कर

परन्तु इनके सभी नाटकों का बहिरंग पश्चिम की नाट्य परंपरा से प्रभावित हुआ है और अंतरंग भारतीय जीवन दर्शन से। इनके नाटकों के नाम हैं संन्यासी, राजस का मंदिर, राजयोग, सिंदूर की होली, मुक्ति का रहस्य, आधी रात, गरुडध्वज, नारद की वीणा, वत्सराज, वितस्ता की लहरें, चक्रव्यूह और अशोक इत्यादि। इन्होंने एकांकी भी लिखे हैं। इनकी भाषा नाटकों के अनुरूप है। ऐतिहासिक, पौराणिक और सांस्कृतिक नाटकों में तो इन्होंने संस्कृत-प्रधान भाषा का प्रयोग किया है परन्तु सामाजिक नाटकों में व्यावहारिक भाषा ही दिखाई देती है।

मिश्रजी एक प्रसिद्ध कवि भी हैं। सेनापति कर्ण नामक इनका महाकाव्य अभी अभी पूर्ण हुआ है।

यशपाल—हिन्दी के प्रगतिशील कथाकार यशपाल का जन्म काँगड़ा में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा इन्होंने गुरुकुल काँगड़ी में प्राप्त की। उसके बाद डी० ए० बी० कालेज लाहौर में अध्ययन किया। पाँचवी, छठी श्रेणी से ही गुरुकुल काँगड़ी में ये कहानियाँ लिखने लगे थे। ये पहिले भगतसिंह, सुखदेव आदि क्रांतिकारियों के सम्पर्क में रहे और कांग्रेस के अनुयायी थे। सन् १९१६ में गांधीजी ने जब असहयोग आन्दोलन को स्थगित किया तब इन्होंने कांग्रेस को छोड़ दिया। ये बंगला, फ्रेंच, इटैलियन, रशियन और उर्दू जानते हैं। कई बार जेल-यात्रा भी की है। प्रसिद्ध साम्यवादी विचार-धारा के पत्र 'विप्लव' का ये संपादन करते थे। यशपाल उन लेखकों में से हैं जो साहित्य को क्रांति की भूमिका तैयार करने का साधन मानते हैं। इन्होंने मार्क्सवाद पर एक पुस्तक लिखी है। इनके प्रसिद्ध उपन्यास दिव्या, देश-द्रोही, दादा कामरेड, पार्टी कामरेड, मनुष्य के रूप आदि हैं। 'उत्तराधिकारी' इनका सर्वश्रेष्ठ

कहानीसंग्रह है। ये यथार्थवादी कलाकार हैं इसी लिये इनके उप-
न्यासों में नग्न चित्रण भी पाया जाता है। इनकी साहित्यिक मान्य-
ताओं से चाहे किसी को विरोध हो परन्तु इन्होंने जो कुछ भी लिखा
है, उसे यदि देखा जाय तो ये हिन्दी में अपने ढंग के अकेले और
गौरवशाली कथाकारों में हैं।

पं० वंशीधर विद्यालंकार—पंडितजी का जन्म क्वेटा में
संवत् १९५८ में हुआ था। आपका शिक्षण गुरुकुल विश्वविद्यालय
काँगड़ी (हरिद्वार) में हुआ। विद्यालंकार की उपाधि प्राप्त करने
के बाद आप गुरुकुल सूपा (सुरत) के आचार्य हुए। वहाँ से आप
उस्मानिया विश्वविद्यालय हैदराबाद में संस्कृत और हिन्दी के
प्राध्यापक नियुक्त हुए और धीरे धीरे अपनी विद्वत्ता तथा योग्यता
के कारण हिन्दी विभाग के अध्यापक बन गए। पिछले वर्ष सं०
२०१२ वि० में आपने विश्वविद्यालय की सेवा से अवकाश ग्रहण
किया है परन्तु तुरन्त हैदराबाद के ही “नानकराम भगवान्-
दास महाविद्यालय” के अधिकारियों ने पं० जी को कालेज का
आचार्य नियुक्त कर लिया।

अपने विद्यार्थी-जीवन से ही परिचित जी कविताएँ लिखा करते
थे। आप की कविताओं की विशेषता यह है कि वे सरल भाषा में
कोई बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कह जाते हैं। शब्दों का आडम्बर उसमें
नहीं होता है। क्वेटा तथा गुरुकुल के प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण
वातावरण में रहते हुए आपने प्रकृति का निरीक्षण किया और
प्रकृति की एक एक वस्तु नदी, फूल आदि आपको प्रेरणा देते हैं।
आपने प्रकृति-वर्णन से युक्त कविताएँ लिखी हैं। आपकी कवि-
ताओं का संग्रह “मेरे फूल” के नाम से छप चुका है।

रवीन्द्र नाथ ठाकुर के निबन्धों का किया हुआ आपका अनुवाद “साहित्य” के नाम से प्रकाशित हुआ है। आप इधर गत चार-पांच वर्षों से “हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार-सभा” द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका “अजन्ता” का सम्पादन कर रहे हैं। “अजन्ता” आजकल हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिकाओं में से एक है। इसका हर एक अंक एक के बाद एक विकास के सोपान पर बढ़ता चला जा रहा है। “अजन्ता” ने कितने ही नये लेखक और कवि हिन्दी जगत् को दिये हैं। इसका सामग्री-चयन एवं सम्पादन अपनी विशेषता रखता है और इसने हिन्दी जगत् को एक ठोस और निष्पक्ष विचार धारा दी है। इसके सम्पादकीय बड़े सुलभे हुए होते हैं।

पण्डित जी ने कालिदास पर गवेषणात्मक कार्य किया है और आपकी एक पुस्तक “शकुन्तला एडे अदर रसेज” के नाम से अंग्रेजी में छप रही है। आपने बहुत से संस्मरण और निबंध लिखे हैं जो स्थायी साहित्य की वस्तु हैं। आपके प्रसिद्ध निबन्ध हिन्दी साहित्य के इतिहास की कुछ समस्याएँ, विज्ञान और भारतीय भाषाएँ, क्या हिन्दी विदेशी भाषा है ?, शिक्षा का माध्यम और हिन्दी का व्यक्तित्व और स्वरूप, हिन्दी राजभाषा या संघभाषा आदि हैं।

विनयमोहन शर्मा—आपका असली नाम शुकदेवप्रसाद तिवारी है। आपका जन्म खंडवा में हुआ। इस समय आप नागपुर विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रोफेसर एवं हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। आपकी साहित्यिक रचनाएँ विनयमोहन शर्मा के नाम से छपा करती हैं तथा “वीरात्मा” के नाम से आप कविता भी करते हैं। आपके भी बहुत से गवेषणात्मक लेख निकल चुके

हैं। आपके कई आलोचनात्मक ग्रंथ निकल चुके हैं। कवि प्रसाद, आँसू और अन्य कृतियाँ, दृष्टिकोण, साहित्यावलोकन, मेघदूत का हिन्दी पद्यात्मक अनुवाद आपके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। दृष्टिकोण एवं साहित्यावलोकन तो आपकी पुरस्कृत रचनाएँ हैं। आपका नवीनतम खोजपूर्ण ग्रंथ “मराठी सन्तों की हिन्दी सेवा” प्रकाशित हो रहा है।

१७—नाटकों का विकास

यद्यपि संस्कृत साहित्य में नाटक बहुत लिखे गये तो भी हिन्दी में नाट्य ग्रन्थों की रचना बहुत पीछे हुई। इसका मुख्य कारण यह समझा जाता है कि हिन्दी के प्रारम्भिक काल में लड़ाइयों के कारण रंगमंचों की रचना न हो सकी और गद्य का रूप भी अनिश्चित होने से नाटक बहुत कम लिखे गये। आधुनिक काल में अंग्रेजी राज्य में जब रंगमंच की स्थापना हुई तो पारसी नाटक कम्पनियों के कारण उर्दू के ही नाटक ज्यादा लिखे गये।

हिन्दी नाटकों के वास्तविक जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं। इनसे पहिले नाटक अवश्य लिखे गये परन्तु ये नाटक कहलाने योग्य नहीं हैं। क्योंकि वे प्रायः संस्कृत के नाटकों के अनुवाद मात्र ही थे। देव का “देवमाया प्रपंच” नामक नाटक एक आध्यात्मिक कविता है। ब्रजवासीदास का ‘प्रबोध-चन्द्रोदय’ संस्कृत नाटक का अनुवाद भी एक कविता ग्रन्थ ही है। इस नाटक का अनुवाद महाराजा जसवंतसिंह ने भी किया था। इनके बाद नेवाज ने ‘शकुन्तला नाटक’ और हृदयराम ने हनुमन्नाटक का अनुवाद किया परन्तु ये नाटक भी कविता में हैं। हिन्दी का प्रथम नाटकीय रीतिकाल के अन्तर्गत १६वीं शती के अंत में रीवाँ-नरेश महाराज विश्वनाथसिंह ने ‘आनन्द रघुनन्दन’ नाम से ब्रजभाषा में लिखा है। परन्तु इसमें भी नाटकीय तत्त्वों का अभाव तथा कविता का प्राधान्य है।

नाटकीय तत्त्वों का पालन करते हुए हिन्दी में पहिला नाटक

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता बाबू गिरिधरदास ने 'नहुष' लिखा जिसमें इन्द्र और नहुष की कथा है। इनके बाद नाटक-रचना में दूसरा नाम राजा लक्ष्मणसिंह का है। उनका 'शकुन्तला' नाटक यद्यपि अनुवाद है तथापि उसमें मौलिकता है और इसीलिए फ्रेडरिक पिंकाट महोदय ने इसका अनुवाद अंग्रेजी में करके इंग्लैंड में छपवाया था।

भारतेन्दु का उदय हिन्दी-साहित्य के लिए एक असाधारण घटना है। देश की आशा और आकांक्षाओं को नाटकों के माध्यम से सबसे पहिले उन्हीं ने प्रकट किया। इनके पूर्व पारसी थियेट्रिकल कम्पनियाँ जो यहाँ नाटक खेलती थीं उनसे जनता का सांस्कृतिक पतन हो रहा था यद्यपि उनके बाजारू गानों आदि से मालिकों को आर्थिक लाभ जरूर होता था। भारतेन्दु ने अपने नाटकों द्वारा जनता की रुचि का परिष्कार किया और हिन्दी रंग-मंच को जीवित किया। उन्होंने कई संस्कृत और बंगला नाटकों के अनुवाद किये और कई मौलिक नाटक लिखे। उनके अनूदित नाटक सात और मौलिक नाटक आठ हैं।

अनूदित नाटक

विद्यासुन्दर, पाखण्ड विडम्बन, धनंजय-विजय, कपूरमंजरी, मुद्राराक्षस, सत्य—हरिश्चन्द्र, भारत-जननी।

मौलिक नाटक

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चन्द्रावली, विषस्य विषमौषधम्, भारत-दुर्दशा, नीलदेवी, अंधेर नगरी, सती प्रताप (अधूरा), प्रेम जोगिनी।

भारतेन्दु के नाटक प्राचीन संस्कृत पद्धति के अनुसार लिखे गये हैं। उनमें प्रस्तावना, भरतवाक्य, स्वगत कथन इत्यादि

पाये जाते हैं। इनके नाटकों में देशप्रेम की भावना अभिव्यक्त होती है।

हरिश्चन्द्र के समय में अन्य लेखकों ने भी नाटक लिखे जिनमें श्रीनिवासदास का 'तप्तासंवरण' और रणधीर-प्रेम मोहिनी तथा संयोगिता-स्वयंवर, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के वीरांगना रहस्य और भारत सौभाग्य नाटक हैं। उसी समय राधा-कृष्णदास का 'महाराणा प्रताप', प्रतापनारायण मिश्र का 'हठी हमीर' ऐतिहासिक नाटक लिखे गये। इस युग में बहुत से नाटकों के अनुवाद हुए।

भारतेन्दु युग के उपरोक्त नाटक भारतेन्दु के समान ही संस्कृत नाटकों की पद्धति पर लिखे गये हैं और उस काल में गद्य खड़ी बोली में तथा उनके गीत ब्रजभाषा में हुआ करते थे।

द्विवेदी युग में ऐतिहासिक और धार्मिक नाटक काफी लिखे गये। राधेश्याम जी कथावाचक ने श्रीकृष्ण अवतार, रुक्मिणी-मंगल और वीर अभिमन्यु नामक धार्मिक नाटक लिखे। जगन्नाथ-प्रसाद चतुर्वेदी का 'तुलसीदास' और मिश्रबन्धु का 'शिवाजी' आदि ऐतिहासिक नाटक हैं।

साहित्यिक दृष्टि से बाबू जयशङ्कर प्रसाद का कार्य बहुत सराहनीय है। भारतेन्दु के बाद 'प्रसाद' जैसी सर्वाङ्गीण प्रतिभा का व्यक्ति दूसरा नहीं हुआ। उन्होंने हिन्दी नाटकों को नई शैली दी। 'प्रसाद' ने मुख्य रूप से ऐतिहासिक नाटक ही लिखे हैं परन्तु अन्य प्रकार के नाटकों का भी उन्होंने मार्ग-निर्देशन किया है। उनके अज्ञातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चंद्रगुप्त, राज्यश्री और विशाख ऐतिहासिक नाटक हैं। उनके ऐतिहासिक नाटकों का विषय बौद्ध-कालीन भारत के गौरव को प्रतिष्ठित करना था। उन्होंने जनमेजय

का नागयज्ञ' नामक एक पौराणिक नाटक भी लिखा है तथा 'ध्रुव स्वामिनी' ऐतिहासिक होते हुए भी मूलतः समस्या नाटक है। उनका 'एक घूँट' हिन्दी का प्रथम एकांकी माना जाता है, 'कुरु-णालय' हिन्दी का पहला गीति नाट्य है।

प्रसाद के नाटकों में मनोवैज्ञानिकता पर्याप्त मात्रा में है तथा अंतर्द्वन्द्व भी दिखलाया गया है। उनके नाटक कलात्मक होते हुए भी रंगमंच के योग्य नहीं हैं तथा उनकी भाषा संस्कृतगर्भित एवं दार्शनिक भावों से युक्त होने से साधारण कोटि के दर्शक के योग्य नहीं।

ऐतिहासिक नाटककारों में हरिकृष्ण प्रेमी, गोविन्दवल्लभ पंत, उदयशङ्कर भट्ट, सेठ गोविन्ददास प्रमुख हैं। प्रेमी जी ने अपने नाटकों की कथावस्तु भारत के मध्यकालीन इतिहास से ली है। उनके 'रत्नाबंधन और स्वप्न भङ्ग' नाटक साहित्यिक दृष्टि से उत्तम होते हुए रंगमंच के योग्य भी हैं। उनके 'रत्नाबंधन' में हिन्दू मुस्लिम-ऐक्य की अभिव्यंजना बहुत सुन्दर ढङ्ग से हुई है। उन्होंने शपथ और शिवा-साधना नाटक भी लिखे हैं। इनके नाटकों में 'प्रसाद' की भांति दार्शनिकता नहीं है और भाषा सरल तथा स्वाभाविक है।

गोविन्दवल्लभ पंत ने राजमुकुट, वरमाला और अंगूर की बेंटी नाटक लिखे हैं। 'राजमुकुट' ऐतिहासिक नाटक है तथा 'वरमाला' पौराणिक। ये दोनों नाटक रंगमंच की दृष्टि से सफल हुए हैं।

उदयशङ्कर भट्ट ने 'दाहर या सिंधपतन' और 'विक्रमादित्य' नामक नाटक लिखे हैं। 'सिंधपतन' एक दुःखान्त नाटक है। उन्होंने कमला और अंतहीन नामक सामाजिक नाटक भी लिखे हैं।

सेठ गोविन्ददास का ऐतिहासिक नाटक 'हर्ष' एक अच्छा नाटक है। 'हर्ष' के अतिरिक्त इन्होंने "उषा, कर्त्तव्य, प्रकाश, नवरस, कुलीनता" आदि नाटक लिखे हैं।

सुदर्शन जी ने 'अंजना' नामक प्रसिद्ध पौराणिक नाटक बहुत सुन्दर ढङ्ग से लिखा है। रामनरेश त्रिपाठी ने 'जयन्त' और सुमित्रा नंदन पंत ने 'ज्योत्स्ना' नामक साहित्यिक नाटक लिखे हैं।

१९वीं सदी के उत्तरार्ध में योरोपीय नाटकों के क्षेत्र में इब्सन और शॉ आदि नाटककारों ने पुरानी परम्पराओं को हटा कर समस्याप्रधान नाटकों को प्रारंभ किया। वहीं से प्रेरणा लेकर हिन्दी में समस्यामूलक नाटक लिखे जा रहे हैं। इसके प्रवर्तक हिन्दी में लक्ष्मीनारायण मिश्र माने जाते हैं। उनके राजयोग, राजस का मंदिर, संन्यासी, सिंदूर की होली, मुक्ति का रहस्य, आधी रात, समस्या नाटक हैं। इनके साथ साथ इन्होंने गरुड़-ध्वज और वत्सराज आदि ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक भी लिखे हैं। परन्तु ये अपने समस्या नाटकों के कारण ही प्रसिद्ध हैं।

इधर हिन्दी में एकांकी नाटक भी लिखे जा रहे हैं। 'प्रसाद' का 'एक घूँट' हिन्दी का प्रथम एकांकी था। उसके बाद भुवनेश्वर प्रसाद का 'कारवाँ' हिन्दी में एकांकी के क्षेत्र में नया प्रयोग था जिस पर इब्सन और शॉ आदि पाश्चात्य विचारकों का प्रभाव था। हिन्दी में डा० रामकुमार वर्मा का नाम एकांकी नाटककारों में विशेष रूप से प्रसिद्ध है। वर्मा जी भारतीय आदर्शों में विश्वास रखते हैं। इनके एकांकी प्रायः सामाजिक और ऐति-

हासिक हैं। पृथ्वीराज की आँखे, रेशमी टाई, चारुमित्रा, सप्त किरण, रूपरंग और सही रास्ता नामक इनके एकांकी नाटकों के संग्रह हैं। एकांकियों के क्षेत्र में उपेन्द्रनाथ अशक, सेठ गोविन्ददास, उदयशङ्कर भट्ट, वृंदावनलाल वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र आदि प्रसिद्ध हैं।

१८—उपन्यास साहित्य

हिंदी का उपन्यास साहित्य भी आधुनिक काल में ही विकसित हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में ही हिंदी में उपन्यासों का सूत्रपात हो गया था परंतु उस समय के उपन्यास अधिकतर बंगला और अंग्रेजी से अनूदित हैं। इन अनुवादकों में गदाधरसिंह, रामकृष्ण वर्मा, कार्तिकप्रसाद खत्री उल्लेखनीय हैं। हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षागुरु' है जिसमें भारतीय सामाजिक दशा का सुंदर चित्रण है। पं० बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी', राधाकृष्णदास ने 'निःसहाय हिंदू' और अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'वेनिस का बाँका' तथा 'अधखिला फूल' नामक उपन्यास लिखे।

हिंदी के प्रारम्भिक उपन्यास-लेखकों में बाबू देवकीनन्दन खत्री विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इनके उपन्यास तिलस्मी हैं। ये उपन्यास अपने समय में बहुत लोकप्रिय हुए और इनके उपन्यासों को पढ़ने के लिये बहुत से लोगों ने हिन्दी सीखी। इनके प्रसिद्ध उपन्यास चन्द्रकान्ता चन्द्रकान्ता सतति, भूतनाथ, काजर की कोठरी, नरेन्द्रमोहिनी, कुसुम कुमारी, वीरेन्द्र वीर आदि हैं।

इनके साथ हिन्दी में गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों का भी उस समय बहुत प्रचार हुआ। इनके उपन्यास 'जासूस' नामक अखबार में छपा करते थे।

किशोरीलाल गोस्वामी ने जासूसी उपन्यास लिखे हैं। इन्होंने लगभग ६५ उपन्यास लिखे हैं। 'अँगूठी का नगीना, लखनऊ की

कबर, च पला, तारा आदि उपन्यास जनता की रुचि को बिगाड़ने वाले हैं। उनमें वासना और विलास का आधिक्य है।

इसी समय हिन्दी में शरत् के उपन्यासों का अनुवाद हुआ परन्तु वैसा उपन्यासकार अभी तक हिन्दी में नहीं हुआ था। इस अभाव की पूर्ति प्रेमचंद ने की। उनके उपन्यास चरित्र-प्रधान हैं। इन्होंने दस उपन्यास लिखे हैं। 'प्रतिज्ञा, वरदान, सेवासदन, निर्मला, गबन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, कर्मभूमि और गोदान। इनके उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं को प्रधानता दी गई है। 'सेवासदन' में दहेज प्रथा, 'निर्मला' में वृद्धावस्था में दूसरे विवाह, शंका और अविश्वास के दुष्परिणाम और 'गबन' में गहने की चाह के बुरे फल को दिखलाया गया है। इनके उपन्यासों में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक अवस्थाओं का चित्रण है। इन्होंने अपने उपन्यासों में दीन, हीन, निर्धनों का चित्रण किया है। इनकी भाषा चलती हुई मुहावरेदार हिन्दी है।

'प्रसाद' ने 'तितली और कंकाल' नामक उपन्यास लिखे।

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक ने 'भिखारिणी और माँ' नामक प्रसिद्ध उपन्यास लिखे हैं। चतुरसेन शास्त्री ने हृदय की प्यास, हृदय की परख, अमर अभिलाषा और आत्मदाह नामक चार उपन्यास लिखे हैं।

उपरोक्त लेखक प्रेमचंद की शैली के लेखक कहे जा सकते हैं परन्तु पाश्चात्य साहित्यिक नवीनतम प्रवृत्तियों के अनुसार लेखकों में हम जैनेन्द्र को प्रथम स्थान दे सकते हैं। इनके उपन्यास परख, त्यागपत्र, सुनीता और कल्याणी में यथार्थवादिता तथा मनो-वैज्ञानिक चित्रण पाया जाता है। इधर 'अज्ञेय' ने फ्रायड के सिद्धांतों के अनुसार शेखर, नदी के द्वीप और चेतना के प्रवाह नामक उपन्यास लिखे हैं।

मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित राहुल जी का सिंह सेनापति, बोलगा से गंगा, भागा नहीं बदलो आदि उपन्यास प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार मार्क्सवादी विचारधारानुसार लिखे गये यशपाल के दिव्या, देशद्रोही, दादा कामरेड आदि उपन्यास प्रसिद्ध हैं।

ऐतिहासिक नाटकों की दृष्टि से वृंदावनलाल वर्मा का नाम प्रसिद्ध उपन्यासकारों में हैं। उन्होंने गढ़कुंडार, विराटा की पद्मिनी, भौंसी की रानी, मुसाहबजू, छत्रसाल, मृगनयनी और कचनार नामक प्रसिद्ध उपन्यास लिखे हैं।

भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा' नामक उपन्यास अपने ढङ्ग का अनूठा है। इसमें पाप-पुण्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। इनके एक दूसरे उपन्यास 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में गाँधीवाद, समाजवाद और आतंकवाद का तुलनात्मक अध्ययन है।

१६—कहानी का विकास

कहानी का साम्य उपन्यास के साथ है। कहानी जीवन की एक महत्त्वपूर्ण भूलक है पर उपन्यास पूरे जीवन की घटनाओं का वर्णन है। उपन्यास में विस्तार की अधिकता होती है परन्तु कहानी में पात्रों के जीवन की एक घटना बड़े मार्मिक ढङ्ग से प्रदर्शित की जाती है। यह सीमित सरल शब्दों में एक विशेष शैली-युक्त प्रभावपूर्ण चित्रण ही कहानी की उच्चता को लक्षित करता है।

संसार के इतिहास में सबसे प्राचीन और श्रेष्ठ कहानियाँ भारत में ही लिखी गयीं। कहानियों का जो आदर्श आज रूस और फ्रांस का है प्राचीन भारतीय कहानियाँ कई सौ वर्ष पूर्व उस स्तर पर थीं। बौद्धों के जातकग्रंथ, पंचतंत्र, हितोपदेश, महाभारत और पुराण आदि की कहानियाँ इसके सुन्दरतम उदाहरण हैं। हिन्दी की कहानियाँ प्राचीन और पाश्चात्य शैली दोनों के सम्मिश्रण का परिणाम हैं। ललनूलाल द्वारा हिन्दी में सर्वप्रथम १६ वीं शती में संस्कृत की 'वैताल पञ्चसी, सिंहासन बत्तीसी' आदि का अनुवाद किया गया। सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा और इंशा अल्ला खॉ ने 'रानी केतकी की कहानी' लिखी।

हिन्दी की मौलिक कहानियों में सर्वप्रथम सं० १६५७ में गोस्वामी किशोरीलाल की 'इन्दुमती' नामक कहानी 'सरस्वती' में छपी थी। हिन्दी की दूसरी मौलिक कहानी 'ग्यारह वर्ष' १६६० में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखी थी और तीसरी कहानी

१९६४ में 'दुलाई वाली' बंगमहिला की निकली। बाबू जयशङ्कर प्रसाद की 'ग्राम' नामक कहानी १९६८ में 'इन्दु' में छपी थी। इनकी कहानियाँ कल्पना प्रधान होती थीं। 'ग्राम' के बाद प्रसाद की 'आकाश दीप, बिसाती, प्रतिध्वनि, स्वर्ग के खंडहर, चित्रमंदिर, पुरस्कार, आँधी' आदि कहानियाँ निकलीं। प्रसाद की प्रायः सभी रचनाएँ प्राचीनता और ऐतिहासिकता को लिए हुए हैं। विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की प्रथम कहानी 'रक्षाबंधन' १९७० में सरस्वती में निकली। उसी वर्ष राधिकारमण सिंह की 'कानों में कंगना' 'इन्दु' में छपी थी। १९७२ में चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की अद्वितीय कहानी 'उसने कहा था' 'सरस्वती' में छपी थी। यह कहानी हिन्दी कथा साहित्य की श्रेष्ठतम कहानी मानी जाती है। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार प्रेमचंद की कहानियाँ १९७३ से निकलने लगीं। प्रेमचंद का प्रादुर्भाव हिन्दी कथा साहित्य की सबसे बड़ी घटना है। इनकी कहानियों में 'बड़े घर की बेटी, रानी सारंधा, शतरंज के खिलाड़ी, ईदगाह, ककन, आदि की बड़ी ख्याति है। इनकी कहानियों में सामाजिक चित्र उपस्थित किये गये हैं। 'नवनिधि, प्रेमद्वादशी, प्रेमपच्चीसी और मानसरोवर के आठ भागों' में इनकी कहानियों के संग्रह निकल चुके हैं। प्रेमचंद की कहानियों में यथार्थ और आदर्श का समन्वय पाया जाता है। प्रेमचंद की ही शैली में कौशिक, सुदर्शन और चतुरसेन शास्त्री की कहानियाँ प्रस्तुत हुई हैं। सुदर्शन की 'न्याय मंत्री' नामक कहानी ने बहुत ख्याति प्राप्त की है। चतुरसेन के "अक्षत, रजकणा, सिंहगढ़ भिजय" आदि कहानी संग्रह निकल चुके हैं।

मनोवैज्ञानिक कहानियों का प्रारंभ जैनेन्द्र से ही हिन्दी में शुरू होता है। इनकी 'अपना पराया' आदि कहानियाँ मनोविश्लेषणात्मक हैं। वृंदावनलाल वर्मा की 'शरणागत', चन्द्रगुप्त

विद्यालांकार की 'गोरा', और मन्मथनाथ गुप्त की 'मर्दुमखोर', उपेन्द्र-
नाथ अशक की 'गोखरु' आदि प्रसिद्ध कहानियाँ हैं ।

स्त्री लेखिकाओं में सुभद्राकुमारी चौहान के 'बिखरे मोती'
नामक कहानी-संग्रह ने बहुत प्रसिद्धि पाई है । मार्क्सवादी विचार-
धारा से प्रभावित यशपाल का 'उत्तराधिकारी' नामक कहानी-संग्रह
भी निकला है ।

आज की कहानी सस्ते रोमांस से हटकर मनोवैज्ञानिक बारी-
कियों पर आ टिकी है ।

२०—निबन्ध साहित्य

संस्कृत में एक कहावत है—“गद्यः कवीनां निकषः वदन्ति” साहित्यकार की कसौटी गद्य है और गद्य में भी निबन्ध लिखना साधारण काम नहीं ।

निबन्धों का इतिहास भी हरिश्चन्द्रयुग से प्रारंभ होता है । इस समय जो निबन्ध लिखे गये उनमें हिन्दू सभ्यता, त्योहारों तथा धार्मिक और सामाजिक रीतिरिवाजों की विवेचना व्यंग के साथ रहती थी । अपने हास्य और व्यंग के कारण ये निबन्ध बड़े सजीव होते थे । इस समय के निबन्ध-लेखकों में बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी “प्रेमघन” प्रसिद्ध हैं ।

द्विवेदी युग में निबन्धों की वृद्धि हुई और उसमें गांभीर्य आ गया । द्विवेदीजी ने अंग्रेजी से ‘बेकन विचार-रत्नावली’ का अनुवाद किया । द्विवेदी जी के ‘साहित्य की महत्ता, कवि और कविता, कवि कर्तव्य, प्रतिभा’ आदि निबन्ध अत्यन्त सुंदर लिखे गये हैं उन्होंने रोचक शैली में ‘दंड देव का आत्मनिवेदन, नल का दुस्तर दूत-कार्य, कालिदास का भारत’ आदि निबन्ध लिखे ।

इनके बाद जब विश्वविद्यालयों इत्यादि में हिन्दी पढ़ाई जाने लगी तब बाबू श्यामसुंदरदास ‘मिश्रबन्धु, गुलाब राय, रामचन्द्र शुक्ल और पदुमलाल पुन्नलाल बख्शी, पूर्णसिंह, पद्मसिंह शर्मा आदि विद्वानों ने बहुत सुंदर निबन्ध लिखे ।

श्यामसुंदरदास का ‘साहित्यालोचन,’ रामचन्द्र शुक्ल की

‘चिन्तामणि’ अद्वितीय निबन्ध ग्रन्थ हैं। शुक्ल जी ने हिन्दी निबन्धों का स्तर बहुत ऊँचा किया है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी विद्वत्तापूर्ण अनुसंधानात्मक लेख लिखे हैं। उनके ‘कबीर’ और ‘नाथपंथ’ पर लिखे हुए लेख बहुत सुंदर हैं।

निबन्ध साहित्य क्रमशः उन्नति करता जा रहा है। यद्यपि पुस्तक रूप में निबन्धों के संग्रह कम निकलते हैं तथापि पत्र-पत्रिकाओं में उच्च कोटि के निबन्ध निकलते हैं। मासिक पत्रिकाओं में सरस्वती, विशालभारत, नया समाज, साहित्य संदेश, अजन्ता, और प्रतिभा द्वारा हिन्दी निबन्ध साहित्य की अभिवृद्धि हो रही है।

हिन्दी के प्रसिद्ध निबन्ध-लेखक पदुमलाल पुत्रालाल बख्शी, हजारीप्रसाद द्विवेदी, नन्ददुलारे वाजपेयी, रामकुमार बर्मा, बलदेव उपाध्याय, परशुराम चतुर्वेदी, विनयमोहन शर्मा, वंशीधर विद्यालंकार, चन्द्रबली पाण्डे आदि हैं।

२१—समालोचना

हिन्दी समालोचना का सूत्रपात भी हरिश्चन्द्र युग से हुआ है। सबसे पहिले बद्रीनारायण चौधरी ने अपनी 'आनन्द-कादम्बिनी' पत्रिका में कई समालोचनात्मक लेख लिखे थे। उन्होंने लाला श्रीनिवासदास के 'संयोगिता स्वयंवर' की विस्तृत आलोचना की थी। इनके बाद आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'कालिदास की निरंकुशता' नामक पुस्तक में कालिदास के ग्रंथों की समालोचना लिखी और विक्रमांकदेवचरितचर्चा तथा नैषधचरितचर्चा नामक समालोचना ग्रंथ लिखे।

द्विवेदीजी के बाद समालोचना क्षेत्र में मिश्रबन्धुओं का प्रवेश हुआ। बिहारी और देव के ऊपर एक तुलनात्मक समालोचना लिखी गई जिसमें देव को श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया। इसी विवाद को लेकर पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए 'बिहारीसतसई' की भूमिका लिखी। इनके बाद कृष्णबिहारी मिश्र ने 'देव और बिहारी' और लाला भगवान दीन ने 'बिहारी और देव' नामक पुस्तकें लिखीं। इनके बाद श्यामसुंदरदास ने सैद्धान्तिक आलोचनाएँ 'साहित्यालोचन' नामक ग्रंथ में लिखीं। इनकी 'साहित्यालोचन', गुलाबराय की 'सिद्धान्त और अध्ययन' और रामचंद्र शुक्ल की "चित्तामणि भाग २" आदि सैद्धान्तिक आलोचनात्मक ग्रंथ हैं।

आचार्य शुक्ल की लिखी हुई 'तुलसीदास, सूरदास और जायसी' की आलोचनाएँ व्याख्यात्मक आलोचनाओं में आती हैं। आज-कल प्रगतिवाद के झंडे के नीचे मार्क्सवादी आलोचना का भी

